प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव-बम्बई

मुद्रक—
मं० ना० कुळकर्णी,
कर्नाटक प्रेस,
३१८ ए, ठाकुरद्वार, बम्बई

निवेदन
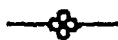
मेरे उदार-हृदय मित्र सेठ हरगोविन्ददास रामजीके यहाँ विविध भाषाओंका ब्रह्मचर्यसम्बन्धी साहित्य सगृहीत है। उन्हें इस विषयके अध्ययनका और अपने परिचित जनोंको अध्ययन करानेका भी बहुत शौक है। मराठी 'संजीवनी विद्या' उन्हींने मुझे लाकर दी और पढनेका आग्रह किया। मैंने पूरे मनोयोगके साथ इसे पढ़ा और अपने मित्रकी इस सम्मतिसे मैं भी सहमत हुआ कि पुस्तक बहुत ही अच्छी है और प्रत्येक स्त्री-पुरुषके, विशेष करके युवक-युवतीके, पढने योग्य है।

एक बार इस पुस्तकके लेखक अचानक ही किसी पुस्तककी खोजमें मेरी दूका-नपर आ गये। मैंने उनसे कहा कि आपकी 'सजीवनी विद्या' बहुत अच्छी चीज है। इसका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया जाय, तो हिन्दी जाननेवालोंका बहुत उपकार हो। उन्होंने कहा कि मैं स्वय ही इसे हिन्दीमें प्रकाशित कर रहा हूँ, आप इसके प्रचारमें मेरा हाथ बँटाइएगा। मैंने बड़ी प्रसन्नतासे उनके इस प्रस्तावको स्वीकार किया और उक्त हिन्दी अनुवादके प्रकाशित होनेकी प्रतीक्षा करने लगा। यह संभवतः सन् १९२६ की बात है। इसके बाद श्रीसीताकान्तजीसे कई बार साक्षात् हुआ; और हर बार मैंने उनसे हिन्दी अनुवादके विषयमें पूछा; परन्तु वे अपनी उक्त इच्छाको पूर्ण न कर सके और लगभग दो वर्ष हुए, तब तो मैंने एकाएक सुना कि उनका स्वर्गवास हो गया। इस संवादसे मुझे बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने अपनी नवजीवनमाला तथा राष्ट्रजीवनमाला आदिके द्वारा मराठी साहित्यकी बहुमूल्य सेवा की थी। उनकी सभी रचनायें युवक-युवतियोंके लिए सजीवनी ओषधियोंसे जरा भी कम नहीं हैं।

श्रीसीताकान्तजीके स्वर्गवासके बाद मैंने उनके पूर्वोक्त प्रस्तावको कार्यमें परिणत करनेका विचार किया; परन्तु लगभग दो वर्ष तक मैं कुछ न कर सका और अब इतने समयके बाद सुप्रसिद्ध साहित्यसेवी बाबू रामचन्द्र वर्माकी कृपासे यह पुस्तक पाठकोंके सामने उपस्थित हो रही है।

हिन्दीमें ब्रह्मचर्य-विषयक अनेक पुस्तकें हैं और उनमेंसे कई अच्छी भी हैं, परन्तु जहाँ तक मैं जानता हूँ, यह पुस्तक अपने ढंगकी निराली है। यह विशेषत. विवाहित स्त्री-पुरुषोंके उपयोगके लिए लिखी गई है और इसमें यह बतलाया गया है कि गृहस्थाश्रमको सुख-शान्ति-स्वास्थ्यसम्पन्न और दाम्पत्य-प्रेमको चिरस्थायी बनानेके लिए इन्द्रिय-सयम तथा वासनाओंको काबूमें रखनेकी, वीर्य-सरक्षण और वीर्य-पावित्र्यकी कितनी आवश्यकता है और किन उपायोंसे इस सजीवन व्रतका पालन हो सकता है। बहुतोंका अनुभव है कि विवाह हो जानेपर तरुण पति और पत्नीमें पहले जैसा उत्साह, उद्योग, फुर्तीलापन नहीं रहता है, उनके शरीर और मन दोनों रोगी हो जाते हैं और जीवनकी रहस्यमयता तथा आकर्षकता कम होने लगती है। परन्तु इसमें शरीरशास्त्र, वैद्यकशास्त्र, योगशास्त्र और धर्मशास्त्रोंके अनुसार बड़े अच्छे ढंगसे समझाया है कि यदि वीर्यका सदुपयोग किया जाय, तो सहवासका पहले जैसा आनन्द चिरकाल तक भी स्थायी रहता है, पारस्परिक सम्बन्ध ज्यों ज्यों समय वीतता है त्यों त्यों और भी अधिक आकर्षक और प्रेमवर्द्धक होता जाता है, नीरोगता, सहनशक्ति और कार्यक्षमता बढती है, गृहस्थाश्रम प्रेममय होता है और सशक्त सन्तान उत्पन्न होती है। इससे पाठक समझ सकेंगे कि इस पुस्तकका विषय कितना महत्त्वपूर्ण है और देशकी वर्तमान परिस्थितिमें इसकी कितनी आवश्यकता है।

पुस्तकके अन्तमें महात्मा गाँधी आदि महापुरुषोंके वे बहुमूल्य उद्धरण दे दिये गये हैं, जो इस विषयसे सम्बन्ध रखते हैं। इनका सग्रह मेरे पुत्र चिरंजीवि हेमचन्द्रके परिश्रमका फल है।

४-९-३१

निवेदक—

नाथूराम प्रेमी

विषय-सूची

पृष्ठांक

ब्रह्मचर्य-महिमा

न तपस्तप इत्याहुर्ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम् ।
उर्ध्वरेता भवेद्यस्तु स देवो न तु मानुषः ॥

अर्थात् और सब तपोंसे ब्रह्मचर्य ही उत्तम तप है। जो उर्ध्वरेता है, ब्रह्म-
चारी है, वह देव है, मनुष्य नहीं ।

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभो भवत्यपि ।
सुरत्वं मानवो याति चान्ते याति परां गतिम् ॥

ब्रह्मचर्यसे वीर्य-लाभ होता है, पराक्रम बढता है, मनुष्य देव बन जाता है
और अन्तमें श्रेष्ठगति पाता है ।

मृत्युव्याधिजरानाशी पीयूषं परमौषधम् ।
ब्रह्मचर्यं महद्रत्नं सत्यमेव वदाम्यहम् ॥

मृत्यु, रोग और बुढ़ापेको नाश करनेके लिए ब्रह्मचर्य अमृततुल्य महान्
औषध है।

शान्ति कान्ति स्मृतिं ज्ञानमारोग्यञ्चापि सन्ततिम् ।
य इच्छति महद्धर्मं ब्रह्मचर्यं चरेदिह ॥

जो शान्ति, कान्ति, स्मृति, ज्ञान, आरोग्य और सन्तानकी इच्छा रखता हो,
उसे ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए ।

ब्रह्मचर्यं परं ज्ञानं ब्रह्मचर्यं परं बलम् ।
ब्रह्मचर्यमयो ह्यात्मा ब्रह्मचर्येव तिष्ठति ॥

ब्रह्मचर्य ही श्रेष्ठ ज्ञान है और ब्रह्मचर्य ही श्रेष्ठ बल है। आत्मा ब्रह्मचर्यमय
है और ब्रह्मचर्यमें ही रहता है।

संजीवनी विद्या

वीर्य

१. वीर्य एक बहुत छोटासा शब्द है; पर उसमें बहुत बड़ा जादू भरा हुआ है। यह वीर्य श्रेय.साधनाका गुरुमन्त्र है। यह त्रिभुवनपर विजय प्राप्त करनेवाली दैवी शक्ति है। यह पुरुषत्वका रहस्य है। वैदिक कालके पुण्यवान् ऋषि प्रार्थना किया करते थे कि—'हे इन्द्र! तू हमें वीर्यवान् पुत्र दे।' दैववान् ब्रिटिश राष्ट्रकी यह भावना है कि केवल वीर्यवान् पुरुष ही तरुणीका पाणिग्रहण करे और धैर्यवान् जर्मनोंका यह मत है कि वीर्यहीन पुरुष इस संसारमें जीवित रहनेके योग्य नहीं है।

चाहे जगद्गुरु शंकराचार्यको देखिए, चाहे जगद्विजयी नेपोलियनको देखिए; योगशास्त्रके प्रचारक पतंजलिसे लेकर कर्मयोगप्रचारक तिलक तक और शस्त्रधारी रामचन्द्रसे लेकर सत्याग्रही गाँधी तक देखिए, 'जितेन्द्रियं बुद्धि-मतां वरिष्ठं' बलभीम या हनुमानसे लेकर रामदास तक और रामदाससे लेकर विवेकानन्द तकके सभी वास्तविक समर्थ कार्यकर्त्ताओंकी परम्परापर ध्यान दीजिए; भारतीय भीष्मका अनन्य सामान्य चरित्र पढ़िए अथवा डार्विन और न्यूटनकी असाधारण आविष्करण-शक्तिपर ध्यान दीजिए; ये सभी लोग वीर्यवान् और पवित्रवीर्य थे और वीर्यवान् तथा पवित्रवीर्य ही हैं।

मुग़ल और मराठे, ग्रीक और रोमन, स्पेनिश और डच लोग भी किसी समय वीर्यवान् और पवित्रवीर्य थे। उस समय उन लोगोंने सार्वभौमत्व सम्पादित किया था और उसकी रक्षा की थी। परन्तु जब बहुत अधिक उन्नति और वैभवके समय हीनवीर्य विलासिता बढ़ी, तब मुग़लोंके शासनका अन्त हो गया, मराठोंका राज्य धूलमें मिल गया, एथेन्स स्मृति-मात्र रह गया; रोम क़ेवल इतिहासवेत्ताओंके लिए ही बच गया; स्पेनका होना और न

होना बराबर हो गया; और डच राष्ट्र आमके पेड़पर रहनेवाले बंदेके समान दूसरोंके भरोसे रहकर अपना समय व्यतीत करने लगा।

आत्मोन्नति और राष्ट्रोन्नतिका मूल आधार

२. सौभाग्यवश हमारी आर्य संस्कृतिमें वीर्यकी रक्षा और पवित्रतापर बहुत कुछ ज़ोर दिया गया है। व्यवहार रूपमें चाहे जो कुछ रहा हो, परन्तु स्वयं हमें वीर्यकी रक्षा तथा पवित्रताका महत्त्व कभी अमान्य नहीं था। उनके प्रति हमारा आदर सदा जाग्रत रहा है। हमारा दृढ विश्वास है कि—

व्यक्ति और राष्ट्र वीर्यवान् तथा पवित्रवीर्य रहते हुए ही जीवित रह सकते हैं; जबतक वे वीर्यवान् तथा पवित्रवीर्य रहेंगे, तभी तक सुखसे जीवन व्यतीत करेंगे और जीवित रहकर कुछ कार्य कर सकेंगे।

वीर्यशालिता ही राष्ट्रकी उन्नति तथा आत्मोन्नतिका मुख्य आधार है; और राष्ट्रका संरक्षण करनेके लिए पहले वीर्यका संरक्षण करनेकी और राष्ट्रके संजीवनके लिए पहले वीर्यके संजीवनकी आवश्यकता होती है।

निर्वीर्य राष्ट्र और निर्वीर्य व्यक्तिको धिक्कार है। वीर्यशाली व्यक्ति और राष्ट्रका जय जयकार हो।

सौभाग्यसे हमें महात्मा गाँन्धी सरीखे नेता मिले हैं, जो वीर्यकी रक्षा और पवित्रतापर पूरा पूरा विश्वास रखते हैं और सबको उसका उपदेश देते हैं।*

---

*इस समय भी मेरे शरीर तथा मनमें अनेक प्रकारकी व्याधियाँ लगी हुई हैं; तथापि जिन साधारण लोगोंके साथ मुझे रहना पड़ा है, अथवा जो मेरे देखनेमें आये हैं, या जिनके साथ मेरा किसी प्रकारका सम्बन्ध रहा है, उनकी अपेक्षा मैं कह सकता हूँ कि मैं बहुत कुछ स्वस्थ और नीरोग हूँ। प्राय. बीस वर्षों तक विषय-भोगमें लिप्त रहनेके उपरान्त सजग और सावधान होनेके कारण ही मेरे शरीरकी ऐसी व्यवस्था है। यदि मैं उन आरम्भिक बीस वर्षोंमें भी अपने वीर्यकी रक्षा कर सका होता, तो आज मेरी स्थिति कितनी अच्छी होती। मेरा तो यह विश्वास है कि उस अवस्थामें मेरे उत्साहका कोई पार ही न रहता; और सचमुच देश-सेवा अथवा स्वार्थसाधनमें मैं ऐसा उत्कृष्ट और अपार उत्साह दिखलाता कि उस काममें मेरी बराबरी करनेवालोंकी परीक्षा ही होती।

—महात्मा गाँधी।

वीर्य-संजीवनी विद्या वास्तवमें राष्ट्रकी उन्नति और आत्म-उन्नतिका मूल मन्त्र है।

प्रजोत्पादन और आत्म-संजीवन

३. मनुष्यके शरीरमें जो वीर्य उत्पन्न होता है, उसके केवल दो ही प्रकारके उपयोग हैं। एक तो आत्म-संजीवन और दूसरा प्रजोत्पादन। जिस वीर्यका प्रजोत्पादनमें उपयोग होता है, यदि उस वीर्यका आत्म-संजीवनके लिए उपयोग किया जाय तो शरीर बलवान् होता है, मन और बुद्धिकी शक्ति बढ़ती है, मनुष्यका शील दैवी हो जाता है और संसारमें आदर्श स्त्री तथा पुरुष देखनेमें आते हैं।

प्रजोत्पादनके द्वारा मनुष्य-जातिकी स्थिति बनी रहती है और उसकी वृद्धि होती है।

आत्म-संजीवनके लिए वीर्यका उपयोग करनेकी जो पद्धति है, इस पुस्तकमें उसीका नाम 'संजीवनी विद्या' रक्खा गया है। यदि वीर्यका व्यर्थ व्यय करनेके बदले उसे उचित मार्गसे शरीरके अन्दर ही स्थिर रक्खा जाय, तो वही वीर्य ओज-शक्तिका रूप धारण कर लेता है। मनमें स्त्रियोंके प्रति जो काम-विकार उत्पन्न होता है, यदि उसका दमन किया जाय, तो उस विकारके उत्पन्न और प्रकट होनेमें जो शक्ति लगती है, उसका निरोध होता है जिससे ओज उत्पन्न होता है; और उस ओजका सारे शरीरपर प्रभाव पड़ता है। स्वामी विवेकानन्दके शब्दोंमें कहा जा सकता है कि जिन स्त्रियों और पुरुषोंके चित्तको काम-विकार स्पर्श नहीं करता, उनमें इस प्रचंड शक्तिका निरोध होता है, जिससे ओजस् उत्पन्न होकर मस्तिष्कमें संचित होता है। इसी लिए सब जगह और सब धर्मोंमें ब्रह्मचर्यका बहुत अधिक महत्त्व बतलाया गया है। जो मनुष्य कामके वशमें होकर पागल हो जाता है, वह मानों ओजस् और तेज नष्ट होनेके मार्गपर अग्रसर होने लगता है। ऐसा मनुष्य अपने स्वरूपसे बहुत दूर जाने लगता है। उसकी इच्छा-शक्ति नष्ट होने लगती है। उसका निश्चय दृढ नहीं होता और उसके हाथसे कोई छोटासा कार्य भी नहीं हो सकता।

४. सभी प्राचीन समाजोंके लोगोंको यह बात भली भाँति विदित हो चुकी थी कि वीर्य-संरक्षणका परिणाम आत्म-संजीवन होता है। जिन लोगोंकी वृत्ति अध्यात्म-प्रबल होती थी और जो लोग शरीर-बल और बुद्धि-बलको विशेष महत्त्व देते थे, वे सब लोग यह बात बहुत अच्छी तरह जानते थे। बाइबलमें काम-वासनाकी उपमा साँपसे दी गई है और ईसाके आरम्भिक चरित्रमें तथा ईसाई धर्मकी बिलकुल आरम्भिक अवस्थामें ऐसा जान पड़ता है कि स्त्रियोंका अस्तित्व एक दमसे भुला ही दिया गया था। रोमन और ग्रीक आदि प्राचीन पाश्चात्य जातियोंमें वीर्यकी रक्षाको बहुत अधिक महत्त्व दिया जाता था।

हिन्दू धर्ममें तो ब्रह्मचर्यका महत्त्व सबसे अधिक बतलाया गया है। हमारे यहाँ ब्रह्मचर्यके नियम भी बहुत कठोर थे×। केवल इतना ही नहीं, हमारे यहाँ तो यहाँ तक व्यवस्था की गई थी कि जब तक विद्यार्थीका विद्याध्ययन समाप्त न हो जाय, तब तक वीर्यके प्रजोत्पादक और बाह्य व्ययकी कल्पना तकका उसके मनके साथ स्पर्श न होने पावे, और आगे चलकर विवाहित जीवन-क्रममें भी अनेक नियमोंके द्वारा यह व्यय रोकने या टालनेका प्रयत्न किया जाता था। वीर्यके नाशका मनुष्यको इतना उग्र स्वरूप दिखलाया जाता था कि सन्तान-प्राप्तिकी आवश्यकता न होनेकी दशामें व्यर्थ वीर्य नष्ट करना मानों बाल-हत्या करना था। इसके उपरान्त आयुष्यके संन्यास और वानप्रस्थ नामक जो दो आश्रम होते थे, उनमें भी वीर्य नष्ट करनेका विचार तक करना अनिष्टकारक कहा जाता था।

धार्मिक स्वरूपवाले अति प्राचीन और प्राचीन-प्राय सभी ग्रन्थोंमें जहाँ जहाँ अवसर आया है, वहाँ वहाँ बराबर कामनिषेधके रूपमें ब्रह्मचर्यका बहुत अधिक महत्त्व बतलाया गया है। यहाँ तक कि यह कहनेमें भी कोई हानि नहीं है कि उसमें एकांगी और कठोरतापूर्ण स्वरूप आ गया है।

५. यहाँ कारणोंकी मीमाँसा करनेकी तो कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती, परन्तु यह बात बहुत ठीक है कि बहुत दिन हुए, वह समय पीछे

× स्मरणं कीर्त्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च॥

छूट गया जब कि वीर्यकी रक्षा और पवित्रताको सबसे अधिक महत्त्व दिया जाता था; और अब आचरणमें तो प्रायः पूर्ण रूपसे और तात्त्विक विचारों तकमें बहुत बड़े अंशमें वह महत्त्व प्रायः नष्ट सा हो गया है। ब्रह्मचर्य-आश्रम अथवा विद्यार्थी-जीवनमें ही अब युवकोंका मन विषय-वासनाके जालमें फँस जाता है। शहरोंकी भीड़-भाड़में रहने, उपन्यास, नाटक आदि पढ़ने, सिनेमा आदिके दृश्य देखने तथा इसी प्रकारके दूसरे दृश्य और श्राव्य उत्कट शृंगारके कारण नवयुवक विद्यार्थियोंका मन पवित्र और स्थिर रहना प्रायः असम्भव हो गया है। गृहस्थाश्रममें विवाहितोंमें तो इसका अतिरेक सभी जगह देखा जाता है, साथ ही अविवाहितोंमें भी विचारोंकी पवित्रता कम होती जाती है और नीति-विरुद्ध आचरण बढ़ता जाता है। संन्यास आश्रम तो अब प्रायः रह ही नहीं गया है। अनेक प्रकारके वैषयिक विचारोंसे लोगोंका मन कलुषित होने लगा है और स्वप्नदोष, हस्तक्रिया, अति स्त्री-सम्भोग और व्यभिचार तथा वेश्या-गमन आदि मार्गोंसे समाजकी भीषण वीर्य-हानि होने लग गई है। इस बातकी कल्पना कदाचित् बहुत ही थोड़े लोगोंको होगी कि यह हानि कितनी व्यापक है और इससे कितनी बड़ी क्षति हो रही है।

यह विषय बहुत ही सूक्ष्म है। सम्भव है कि बहुतसे लोगोंको अनेक कारणोंसे इस सम्बन्धकी कही हुई बातें अप्रिय जान पड़ें; और प्रायः सब जगह यही साहजिक प्रवृत्ति देखनेमें आवेगी कि इस प्रकारके पुराने विचारोंको जहाँका तहाँ रहने दिया जाय। ऐसी स्थितिमें शिष्टाचार और शिष्ट कल्पनापर आघात न करते हुए हम यह अप्रिय सत्य शास्त्रीय रीतिसे और शर्करासे अवगुंठित करके लोगोंके समक्ष उपस्थित करते हैं और जिन लोगोंको इस प्रकारके विचार अच्छे नहीं लगते, उनसे क्षमा माँगते हुए इस विषयका विवेचन आरम्भ करते हैं।

वीर्यके अपव्ययके हमने ऊपर चार मार्ग बतलाये हैं। परन्तु उन चारोंका विवेचन करनेसे पहले हम यहाँ यह बतला देना चाहते हैं कि शरीरमें वीर्य किस प्रकार उत्पन्न होता है और उसका शास्त्रीय या वैज्ञानिक दृष्टिसे क्या महत्त्व है।

वीर्यकी रक्षा क्यों की जानी चाहिए ?

६. यह बात प्रायः सभी जगह देखनेमें आती है कि जिस दिन लोगोंको यह कहनेका अवसर मिलता है कि भई, आज तो हम बहुत थक गये हैं या जिस दिन किसीको बहुत अधिक शारीरिक परिश्रम करना पड़ता है अथवा बहुत अधिक मानसिक परिश्रम करना पड़ता है, उस दिन मनुष्य चाहे कितना ही अधिक स्त्रैण क्यों न हो, उसे स्त्रीके साथ सम्भोग करनेकी इच्छा नहीं होती।

यह अनुभव बहुत ही अर्थपूर्ण है। इस अनुभवका अर्थ यह है कि शारीरिक और मानसिक परिश्रम करनेमें शरीरकी जो शक्ति व्यय होती है, उसे फिरसे उत्पन्न करने और शारीरिक तथा मानसिक परिश्रम करनेके कारण होनेवाले शारीरिक ह्रासकी पूर्ति करनेके लिए वीर्यकी अत्यन्त आवश्यकता होती है। वीर्यसे ही मनुष्यमें परिश्रम करनेकी शक्ति आती है और वीर्य ही शरीरकी क्षतिकी पूर्ति करता है। जो यह प्रश्न होता है कि वीर्यकी रक्षा क्यों की जाय, उसका यही एक ऐसा उत्तर है जिसके सम्बन्धमें किसी प्रकारकी शंका नहीं की जा सकती।

इसपर यह प्रश्न किया जा सकता है कि जिस समय ऐसा परिश्रम करना पड़ता होगा और शारीरिक ह्रास या छीजकी पूर्ति करनेकी आवश्यकता होती होगी, उस समय इच्छाका नियमन या निरोध स्वभावतः और आपसे आप होता होगा। परन्तु जिस समय ऐसा नियमन या निरोध स्वाभाविक रूपसे न होता हो, उस समय भी बलपूर्वक इच्छाका इस प्रकार नियमन करनेकी क्या आवश्यकता है ? इस प्रश्नका उत्तर बहुत ही सरल है।

एक तो साधारण मनुष्य अपना काम उतनी एकाग्रताके साथ नहीं करते, जितनी एकाग्रताके साथ वह किया जाना चाहिए। दूसरे वे पूरे उत्साहके साथ काम नहीं करते। तीसरे पूरा पूरा काम नहीं करते और चौथे सफाईके साथ नहीं करते। इन सब विषयोंमें उनके काम बहुत ही निम्न कोटिके हुआ करते हैं। कुछ तो वंश-परम्परासे चले आये हुए और कुछ स्वयं अर्जित किये हुए ह्रासकारक आचारों तथा विचारोंके कारण उनकी कार्य करनेकी शक्ति बहुत ही कम रहती है। यदि मनुष्य अपनी काम करनेकी वह शक्ति चाहता हो, तो वीर्यहानिको रोकनेके लिए हमें इस बातका आसरा

देखनेकी आवश्यकता नहीं है कि इसके लिए स्वयं प्रकृतिकी ओरसे हमपर कड़ी ताकीद की जाय। मनुष्यका यह सर्वांगिक ह्रास मुख्यतः वीर्य-हानिके कारण ही होता है। वीर्यकी हानिको रोकने और शक्तिकी रक्षा तथा सामर्थ्यकी वृद्धि करनेवाले दूसरे मार्गोंका अवलम्बन करनेसे मनुष्यकी शारीरिक और मानसिक परिश्रम करनेकी शक्ति इतनी अधिक बढ़ जायगी कि वह पहलेकी अपेक्षा अपने सब काम कई गुनी अधिक सफाईके साथ फलतः सफलतापूर्वक तथा अधिक मात्रामें करने लगेगा।

दुधारी तलवार

चाहे कोई शक्ति हो, जब एकबार वह स्थूल रूपसे प्रकट होती है, तब उसकी मृत्यु हो जाती है। वह फिर किसी प्रकार लौटकर नहीं आ सकती।

—स्वामी विवेकानन्द (राजयोग)।

७. इच्छा भी बड़ी विलक्षण वस्तु है। जब एक बार मनमें किसी बातकी इच्छा उत्पन्न होती है, तब उसे पूर्ण करनेके लिए बहुत अधिक शारीरिक शक्ति भी साथ ही उत्पन्न होती है। चाहे उस इच्छाका पूर्ण होना सम्भव हो और चाहे असम्भव हो, परन्तु मनमें इच्छा उत्पन्न होनेके साथ ही साथ शरीरमें जितनी शक्ति एकत्र रहती है, वह सब अपने स्थानसे निकल पड़ती है। और जब एक बार शक्ति-स्फुरण हो जाता है, तब उसका व्यय भी अवश्यम्भावी हो जाता है। मनुष्यके मनमें इच्छा सदा भिन्न भिन्न रूपोंमें स्फुरित होती रहती है। परन्तु बहुतसे अवसरोंपर उस इच्छाकी पूर्ति नितान्त दुस्साध्य हुआ करती है और मनुष्य यह बात समझता भी है कि इस इच्छाका पूर्ण होना दुस्साध्य है। परन्तु इतना समझने पर भी वह इस बातका ध्यान नहीं करता; और इसी लिए बहुतसी शक्ति अकारण और व्यर्थ ही व्यय होती रहती है।

काम-धन्धे, नौकरी-चाकरी या पारिवारिक सुख आदिके सम्बन्धमें मनुष्य अपने मनमें सदा बहुतसी बड़ी बड़ी बातें सोचा करता है, बड़े बड़े बाँधनू बाँधा करता है। परन्तु जब उसका कोई विचार या मन्सूबा पूरा नहीं उतरता, तब वह हाथ-पैर ढीले छोड़कर चुपचाप बैठ जाता है। उस समय उसके शरीरमें संग्रहीत शक्तिका बहुत बड़ा भाग उस इच्छाकी स्फूर्तिमें ही व्यर्थ व्यय

हो जाता है। इसी कारण कुछ समय तक उसके हाथों और पैरोंको और साथ ही उसके मनको भी उतनी शक्ति प्राप्त नहीं होती, जितनी साधारणतः होनी चाहिए। उस समय शरीर और मनकी वैसी ही हीन अवस्था हो जाती है जैसी किसी दिवालिये पिताके छोटे छोटे बच्चोंकी होती है।

स्त्रीके साथ सम्भोग करनेकी इच्छा कोई अस्वभाविक बात नहीं है; परन्तु जब वह इच्छा अनियन्त्रित हो जाती है, तब दुधारी तलवारका काम करने लगती है। यदि इच्छा उसी समय पूरी या तृप्त कर ली जाय, तो वह शरीरकी अमूल्य शक्तिका क्षय करती है और यदि तृप्त न की जाय, तो भी अन्यान्य समस्त इच्छाओंके समान वह केवल अपने स्फुरणात्मक अस्तित्वसे ही और अस्तित्वके लिए ही शरीरकी बहुतसी शक्ति जलाकर राख कर देती है। केवल इतना ही नहीं, वह अन्यान्य इच्छाओंकी अपेक्षा कहीं अधिक हानिकारक सिद्ध होती है। इसका कारण यह है कि इस इच्छाका सम्बन्ध शारीरिक शक्तिके उद्गमके साथ रहता है। इसी लिए इसके कारण शक्तिका तत्काल क्षय होता है और बहुत अधिक मात्रामें होता है। अन्यान्य इच्छाओंका परिणाम तो प्रायः अप्रत्यक्ष हुआ करता है, परन्तु इसका परिणाम अप्रत्यक्ष नहीं होता। इसके सिवा अन्यान्य इच्छाओंकी पूर्त्ति होने पर तो एक नवीन जीवन प्राप्त होता है, परन्तु इसकी पूर्त्ति होनेपर वह बात नहीं होती।

तात्कालिक प्रायश्चित्त

कहा है—

सद्यः प्रज्ञाहरा तुंडी सद्यः प्रज्ञाकरा वचा।
सद्यः शक्तिहरा नारी सद्यः शक्तिकरः पयः॥

८. स्त्री-प्रसंग शरीरकी शक्तिका तत्काल क्षय करता है। अति स्त्री-प्रसंग और उससे होनेवाले दूरके परिणामोंका विचार कुछ समयके लिए छोड़ भी दिया जाय, तो भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि वीर्यका नाश होनेपर शक्तिका तत्काल क्षय होता है। ज्यों ही वीर्यका नाश होता है, त्यों ही यदि आत्म-निरीक्षण किया जाय, तो स्पष्ट रूपसे यह पता चल जाता है कि शक्तिका यह क्षय कैसा और कितना अधिक होता है।

चरक-संहितामें वीर्यनाशका परिणामकारक वर्णन केवल दो ही श्लोकोंमें गया है, जो इस प्रकार है—

रस इक्षौ यथा दध्नि सर्पिस्तैलन्तिले यथा ।
सर्वत्रानुगतं देहे शुक्रं संस्पर्शने तथा ॥
तत् स्त्रीपुरुषसंयोगं चेष्टासंकल्पपीडनात् ।
शुक्रं प्रच्युते स्थानात् जलमार्द्रात्पटादिव ॥

अर्थात् जिस प्रकार ऊखमें रस, दहीमें घी और तिलोंमें तेल रहता है, उसी प्रकार सारे शरीर और त्वचामें वीर्य व्याप्त रहता है। जिस प्रकार गीले कपड़ेको निचोड़नेसे उसमेंसे जल निचुड़कर निकल जाता है, उसी प्रकार स्त्री-पुरुष-सम्भोग, काम-चेष्टा, काम-विकार और मर्दनके द्वारा शरीरमेंसे वीर्य निचुड़कर निकल जाता है।

तात्पर्य यह कि वीर्य सारे शरीरमें व्याप्त रहता है, और कोल्हूमें डाले हुए ऊखकी तरह सारा शरीर पेरा जाता है, जिससे उसमेंका वीर्य निकल जाता है और शरीर निर्वीर्य हो जाता है।

यावद्बिन्दुः स्थिरो देहे तावत्कालभयं कुतः ।

—योगतत्वोपनिषद् ।

अर्थात् जब तक वीर्य स्थिर रहता है, तब तक मनुष्यको कालका भी भय नहीं रहता।

अतिस्त्रीसंयोगाच्च रक्षेदात्मानमात्मवान् ।

९. बहुत अधिक स्त्री-प्रसंग करनेसे अनेक प्रकारके शूल, खाँसी, ज्वर, दमा, वातरोग, अशक्तता, पाडु, क्षय आदि रोग उत्पन्न होते हैं। इसलिए बहुत अधिक स्त्री-प्रसंगसे अपनी रक्षा करनी चाहिए।

शूल-कास-ज्वर-श्वास-कार्श्य-पाण्ड्वामय-क्षयाः ।
अतिव्यवायाज्जायन्ते रोगाश्चाक्षेपकादयः ॥

—सुश्रुत, चिकित्सास्थान ।

प्रो० माइकेल लेवी कहते हैं—"स्त्री-प्रसंगका जो विघातक परिणाम होता है, वह अब सब लोगोंको ज्ञात हो गया है। परन्तु अति-प्रसंगके कारण धीरे धीरे बढ़ता रहनेवाला जो दुष्परिणाम होता है, आरम्भमें क्षीण मनुष्योंका उसकी ओर ध्यान नहीं जाता। और लोगोंकी तो बात ही जाने दीजिए, वैद्य और डाक्टर लोग भी उस दुष्परिणामको किसी दूसरे रोगका

पूर्वरूप समझने लगते हैं। प्रायः ऐसा होता है कि वैद्य या डाक्टर किसी रोगको Hypochondria (मानसिक शरीर-दौर्बल्य) पचनेन्द्रियका रोग अथवा हृद्रोगकी प्रारम्भिक अवस्था मान बैठते हैं। पर वह व्याधि वास्तवमें किसी न किसी प्रकारके अति स्त्री-प्रसंगके कारण उत्पन्न जननेन्द्रियकी ही व्याधि होती है । सारा शरीर सूखने लगता है, मस्तिष्कमें रक्तकी अभिवृद्धि होती है जिससे कोई रोग उत्पन्न हो जाता है, अथवा शरीर या उसका कोई अंग वातके झटकेसे शून्य और लुंज हो जाता है। डाक्टर लोग इसका कारण मज्जा-पृष्ठरज्जुवाले भागमें ढूँढ़ने लगते हैं। परन्तु अधिकांश अवसरोंपर उसका कारण अधिक स्त्री-प्रसंग ही होता है। अनेक प्रकारके कष्टप्रद उन्मादोंका मूल भी यही अतिस्त्री-प्रसंग रहता है; और आनुवंशिक सम्बन्ध न रहनेकी दशामें भी अनेक युवकोंको जो क्षय रोग हो जाता है, वह भी प्रायः इसी कारण होता है । इस प्रकारके और भी बहुतसे रोग अतिस्त्री-प्रसंगके कारण उत्पन्न होते हैं, और डाक्टर लोग उनका कुछ यों ही अटकल-पच्चू सा उपाय करते हैं।"

वीर्यका क्षय होनेके कारण अन्तमें बहुतसे रोग आ घेरते हैं, बल्कि प्रत्यक्ष मृत्यु ही हो जाती है।

आहारस्य परमं धाम शुक्रं तद्रक्ष्यमात्मनः।
क्षये ह्यस्य बहून् रोगान् मरणं वा नियच्छति ॥

१०. वीर्य वास्तवमें आहारका आत्यन्तिक स्वरूप है। वीर्यका नाश होनेसे अनेक प्रकारके रोग आ घेरते हैं, किंवा मृत्यु तक हो जाती है।

एक विशेष प्रकारकी मकड़ी होती है जो बहुत अधिक खाती है। उसके अधिक खानेका अनुमान केवल इस बातसे किया जा सकता है कि यदि वह आकारमें मनुष्यके समान होती, तो उस मांसभक्षकके लिए सवेरेके समय जलपानके लिए एक बकरी और दोपहरको भोजनके समय एक छोटे मोटे भैंसेकी आवश्यकता होती। वह इतने अधिक खाद्य पदार्थका क्या करती है? उसकी पीठपर एक सफेद गठड़ी सी होती है। यदि वह गठड़ी खोलकर देखी जाय, तो उसमें उसीकी जातिके बहुतसे जीव चिपके हुए दिखलाई पड़ते हैं। वह जो बहुत अधिक भोजन करती है, उसीका यह फल है।

किसी हरे पत्तेपर बैठे हुए कीड़ेको देखिए। कीड़ा केवल एक जीवबिन्दु होता है और उसके शरीरभरमें एक सूक्ष्म पचन-नलिका भर होती है। तो भी वह बहुत अधिक भोजन करता है। वह कहीं इधर उधर पड़ा रहता है। वसन्त ऋतुके आते ही उसमें चेतनता आ जाती है और वह खूब तेजीके साथ इधर उधर उड़ने लगता है। कुछ दिनोंमें वह अंडे देता है और फिर मर जाता है।

आहारका पर्यवसान वीर्य है और वीर्यनाशका पर्यवसान मृत्यु है

मनुष्य अनाज और फल आदि खाता है। अनाज और फल आदि बीज हैं और जीवनयुक्त हैं। मनुष्य जीवनयुक्त अन्न खाकर अपने व्यय होनेवाले जीवनकी पूर्ति करता रहता है। प्रत्येक प्राणीको आहारके रूपमें जीवन प्राप्त होता रहता है और वह अंडे अथवा पिंडके रूपमें जीवन बाहर निकालता रहता है।

उत्क्रान्तिकी कुछ श्रेणियोंके कीटक आदि प्राणी इस नवीन जीवोत्पत्तिके पहले ही और एक ही प्रयत्नमें अपना जीवन समाप्त कर देते हैं। शेष प्राणी इस क्रियामें अपने जीवनका अन्त तो नहीं करते, पर उसे बहुत कुछ कम कर लेते हैं।

मनुष्य प्राणी आहारका सेवन करके अपने शरीरमें वीर्य संचित करता है और उस वीर्यका व्यय करके प्रजा या सन्तान उत्पन्न करता है। परन्तु इस क्रियामें वह अपने जीवनका अन्त नहीं कर डालता। परन्तु हाँ, यदि ऊपर बतलाये हुए बहुत अधिक परिमाणमें अपने वीर्यकी हानि करे, तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसका पर्यवसान अनेक प्रकारके रोगों और मृत्युमें हुए बिना नहीं रहेगा।

विश्वासघातक औषधें

११. जो आदमी पीतल या रोल्ड–गोल्डके गहनेको शुद्ध सोनेका गहना बतलाकर बेचता है अथवा किसी महाजनके पास उसे रेहन रखता है, उस आदमीपर विश्वासघात करनेके अपराधमें अदालतमें मुकदमा चलाया जा सकता है, और प्रायः उसे सरकारी मेहमान बनकर कारागारमें भी जाना

पड़ता है। परन्तु ७२ रोगों और हजारों व्याधियोंपर रामबाणका सा गुण दिखलानेवाले और नवीन जीवन प्रदान करनेवाले मदनविलास चूर्ण, मदन-दीपक पाक, बलभीम गुटिका, रतिविलास भस्म और तारुण्यामृत आदि बेचनेवाले वैद्योंपर सरकार अथवा समाज कोई ध्यान देनेकी आवश्यकता नहीं समझता। कानून और कायदा चाहे जो कुछ कहता हो, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इस प्रकारकी आश्चर्य-वटिकाएँ बेचनेवाले देशी और विदेशी लोगोंमेंसे सौमें नव्वे विश्वासघातक ही होते हैं। इनकी औषधें जिन रोगोंपर अपना गुण दिखलाती हैं, उन रोगोंकी सूचीमें कदाचित् एक भी रोग छूटा हुआ नहीं रहता, और उनके विज्ञापनोंकी शब्द-रचना ऐसी होती है जिससे ध्वनि निकलती है कि चाहे कोई आदमी कैसा ही हृष्ट पुष्ट और नीरोग क्यों न हो, परन्तु फिर भी उसके लिए इन औषधोंका सेवन आवश्यक ही है।

वीर्य-रस

१२. शरीरमें वीर्य उत्पन्न करनेवाले जितने अंग हैं, उन सबमें प्रमुख अंग वृषण (अण्डकोश) है। यह शरीरबाह्य लिंगावयव है। यह द्विदल भाग सैकड़ों सूक्ष्म बिन्दुओंका बना हुआ होता है और उसके अन्दर वीर्यनलिकाएँ फैली हुई होती हैं। ये नलिकाएँ सूक्ष्म जीव-कणोंसे वेष्टित रहती हैं। उन्हींमेंसे वीर्य-रस उत्पन्न होकर इन नलिकाओंके द्वारा वृषणमें पहुँचता है। ये वीर्य-नलिकाएँ अत्यन्त कोमल होती हैं। इस प्रकारका यह द्विदल अवयव दो मांसरज्जुओंके द्वारा शरीरके साथ मिला रहता है। ये रज्जुएँ शरीरमें मिल जाती हैं। ये रज्जुएँ अनेक शिराओं, धमनियों और मज्जातन्तुजाल आदिकी बनी हुई होती हैं और उनमेंसे कुछ मज्जातन्तु ठेठ मस्तकमेंके मज्जाकन्द तक पहुँचे हुए होते हैं।

शरीरमें पेटके नीचे पेडूवाले भागके अन्तर्गत लिंगावयव रहता है और उसमें मीलों लम्बी ऐसी रक्तवाहिनियाँ होती हैं, जो उस अवयवकी ओर रक्त ले आती हैं और उस अवयवमेंका अशुद्ध रक्त शुद्ध करनेके लिए हृदयकी ओर ले जाती हैं। ऊपर जो सूक्ष्म पिंड बतलाया गया है, वह शुद्ध रक्त वहन करनेवाली नलिकाओंमेंके ताजे रक्तका सत्वांश जमाकर वीर्य-रसका निर्माण करता है। यह सर्वश्रेष्ठ रस बनानेका काम इस बहुत ही छोटेसे पिंडको करना पड़ता है; और इसी लिए उस चैतन्य रसके अपव्ययका भी वैसा ही भीषण होता है।

साधारणतः जब तक लड़का बारह वर्षका नहीं हो जाता, तब तक वीर्य-रसकी एक भी बूँद मूत्र-मार्गकी ओर नहीं जाती। उसका व्यय अस्थि, स्नायु, मज्जा आदिके पोषणमें होता है। उसका उपयोग शरीरकी यथोचित वृद्धि और शरीरके संजीवनमें होता है। युवावस्था और प्रौढावस्थामें भी जब यह वीर्य-रस शरीरके बाहर नहीं जाता, तब सारे शरीरमें खेलता रहता है और शरीरको नवीन जीवन प्रदान करता है। इससे यह बात निस्सन्देह रूपसे सिद्ध होती है कि शरीरसे बाहर जानेवाले वीर्य या चैतन्य रसके प्रत्येक विन्दुके रूपमें हम अपने जीवनका ही मूल्य देते हैं।

वीर्य-कण

१३. वीर्य पूर्ण रूपसे केवल वृषणमें ही तैयार नहीं होता। वीर्यमेंका उत्पादक अंश शरीरके रस-पिंडोंमेंसे तैयार होकर रसता है। वृपणका कार्य दो प्रकारका होता है। उसका पहला कार्य तो उत्पादक पुरुष-जीवकण तैयार करना है। जब यह पुरुष-जीवकण स्त्रीके गर्भाशयमेंके उत्पादक स्त्री-जीव-कणके साथ संलग्न होता है, तब उस संगमसे मनुष्य-गर्भका निर्माण होता है। पुरुष-जीवकण बहुत ही सूक्ष्म होता है। वह वृपणमें अवतीर्ण वीर्य-रसपर उतराता रहता है। उसकी ऐसी ही स्वतन्त्र गति रहती है। वृपणमें ये जीव-कण केवल तीव्र काम-वासनाके समय ही अवतीर्ण होते हैं। सम्भोगके समय इस प्रकारके असंख्य पुरुष-जीवकणोंका निर्माण होता है और वासना-पूर्त्तिके समय वे वीर्य-नलिकाके वीर्य-रसमेंसे बाहर निकलते हैं।

ये जीव-कण और कुछ नहीं, पुरुषके शरीरके सर्वश्रेष्ठ जीवन-द्रव्यके चैतन्यमय विन्दु ही हैं। यह जीवन-द्रव्य हमारे शरीरके समस्त रक्त-रसका सार और सर्वस्व होता है। यदि शरीरका साठ तोले रक्त एकत्र किया जाय, तब कहीं जाकर उसमेंसे एक तोला वीर्य-रस निकल सकेगा। इस प्रकार यह वीर्य-रस जितना ही दुष्प्राप्य है, शरीर-धारणके लिए वह उतना ही अधिक आवश्यक भी है। ऐसी अवस्थामें यदि आचार और विचारमें काम-वासनाको बराबर बिना किसी प्रतिबन्धके छोड़ दिया जाय, तो सहजमें इस बातकी कल्पना की जा सकती है कि उससे शरीरमेंका समस्त सारभूत तत्त्व कैसी सफाईके साथ धुलकर निकल जायगा।

प्रायः वयके चौदहवें वर्ष तक वीर्यमें इन जीव-कणोंका निर्माण नहीं होता। ठंढे जलवायुकी अपेक्षा गरम जलवायुमें ये जीव-कण अधिक जल्दी तैयार होते हैं। परन्तु ये जितनी ही अधिक देरमें तैयार हों, उतना ही अच्छा है। वयके चौदहवेंसे लेकर तेइसवें वर्ष तकका समय मनुष्यके सभी अंगोंकी वृद्धि होनेका समय है। इस समय उसके शरीरकी समस्त शक्तिकी उसकी शारीरिक तथा मानसिक वृद्धिमें सहायक होनेकी आवश्यकता होती है। ऐसे समयमें शरीरका एक विन्दु भी वाहर निकालना, मानो उतने ही परिमाणमें आत्म-हत्या करनेके समान होता है।

पुनरुज्जीवक वीर्यकण

१४ वृषणका एक कार्य तो यह हो गया कि वह शरीरसे वाहर निकलनेवाले वीर्यका निर्माण करता है। उसका दूसरा कार्य यह है कि वह इस वाहर निकलनेवाले रसके समान ही एक दूसरे अन्तर्वर्त्ती रसका भी निर्माण करता है। वृषणमें यह रस प्रस्तुत होकर फिर रक्तमें जाकर मिल जाता है और रक्तमेंसे होकर वह शरीरके सभी अंगों और प्रत्येक शरीर-कण तक पहुँचकर उन सवको नवीन जीवन प्रदान करता है। अस्थि, स्नायु, मस्तिष्क और मज्जातन्तु आदिकी पूरी पूरी वृद्धिमें यही रस कारणीभूत होता है। यद्यपि आधुनिक वैज्ञानिक प्रयोगों आदिके द्वारा इस रसका स्वरूप अभी निश्चित नहीं हो सका है, तो भी उन प्रयोगों और परीक्षाओंसे उसका कार्य निस्सन्देह रूपसे निश्चित हो गया है। ऐसा जान पड़ता है कि यही वह 'ओज' है। यदि निरन्तर वीर्यका नाश होता रहे, तो रक्तमेंके उस अन्तर्वर्त्ती रसको उत्पन्न करनेमें सहायक होनेवाले उस सत्त्वांशमें कमी हो जाती है; और शरीरमें इस नवजीवनप्रद रसके निर्माणके कार्यमें वाधा पड़ती है। इच्छा, सामर्थ्य, शक्ति, दृढता, धैर्य, मौकेकी सूझ, तत्त्वैकदृष्टि, सजीवता और कार्य करनेकी पूर्ण क्षमता आदि ऐसे आवश्यक गुण हैं, जो लोकमें पुरुषत्वके निदर्शक समझे और माने जाते हैं और जो पुरुषार्थके साधनमें सहायक होते हैं। और ये सव गुण इसी ओजःशक्तिपर अवलम्बित रहते हैं।

वैलोंका यह अवयव नष्ट करनेकी प्रथा वहुतसे स्थानोंमें देखी जाती है। इस प्रकार वधिया किये हुए वैलोंकी प्रजोत्पादनकी शक्ति नष्ट हो जाती है। ` अगोंमें शक्ति हो सकती है, पर उनमें जोम या तेज बिलकुल नहीं

रह जाता। वे सब प्रकारसे दब्बू बन जाते हैं। पशुओंकी सभी जातियोंमें नरोंकी ऐसी ही अवस्था होती है।

चाहे किसी कारणसे पुरुषका वृषण नष्ट हो जाय, वह इसी प्रकारसे पुरुषत्वके गुणोंसे हीन हो जाता है। प्राचीन कालके मुग़ल बादशाह और अमीर लोग अपने जनानख़ानोंमें इसी प्रकारके आदमी (खोजे और कंचुकी आदि) रखते थे, जिनके अंडकोश नष्ट कर दिये जाते थे। ऐसे लोगोंके चेहरेपर पूरी पूरी दाढ़ी मूँछ भी नहीं आती, उनकी आवाज़ बेदम हो जाती है, उनके कन्धे नीचेकी ओर झुक जाते हैं, छाती अन्दरकी ओर धँस जाती है, स्नायु शिथिल हो जाते हैं और उनके शरीरकी आकृति कुछ कुछ स्त्रियोंके समान, परन्तु बेडौल और कुरूप हो जाती है। उनमें स्त्रियोंके प्रति किसी प्रकारका आकर्षण नहीं रह जाता।

व्यर्थ ही अपने वीर्यका नाश करके बहुतसे नवयुवक अपने आपको इसी प्रकार बधियासा कर लेते हैं।

अन्तस्थ अवयव

१५. वीर्य एक मुलायम और गाढ़े पदार्थका बना हुआ होता है। वह अंडेकी सफेदीके ही समान होता है। यह गाढ़ा, सफेद, मुलायम रस शरीरमेंके एक द्विदल पिंडमेंसे बहकर निकलता है। यह पिंड शरीरके अन्दर मूत्राशयके पिछले भागमें रहता है और इसी रससे पुरुष-जीव-कणोंको पोषक सत्वांश मिला करता है।

वृषणमें जो जीव-कणोंका निर्माण होता है, वह केवल काम-वासना बहुत प्रबल होनेपर ही होता है; और केवल उतना ही तैयार होता है जितनेसे जीव-कणोंका निर्माण हो सके। परन्तु इस अन्तस्थ पिंडमेंसे निरन्तर थोड़ा थोड़ा स्राव होता रहता है। यदि वीर्यका नाश करके वृषण बार बार खाली किया जाय, तो शरीरमेंके अंतर्वर्ती वीर्य-रसको यह रस उतनी मात्रामें नहीं मिलता जितनी मात्रामें साधारणतः मिलना चाहिए।

इस रसके एकत्र होनेसे वह अन्तस्थ पिंड फूलता है और उसमेंसे वह रस निकलकर अन्दर ही अन्दर सारे शरीरमें फैलता है। जिस समय इस रसके एकत्र होनेके कारण वह अन्तस्थ पिंड फूलता है, उस समय वीर्य धारण करनेवाले अवयवपर ज़ोर पड़ता है। जिस प्रकार स्पर्श आदि बाहरी कार-

णोंसे यह वीर्यावयव उत्तेजित होता है, उसी प्रकार अन्दरसे ज़ोर पड़नेपर भी उत्तेजित होता है। युवावस्थामें, साधारणतः १४ से २१ वर्षकी अवस्था तक और इसके उपरान्त भी कुछ दिनोंतक, इस पिंडका काम बहुत ज़ोरोंसे होता रहता है। इसी लिए यह अन्तर्गत उत्तेजक कारण युवकोंकी काम-वासना अधिक बढ़ाता है। जिस समय वीर्यावयवपर इस प्रकार ज़ोर पड़ता है, उस समय युवकोंके मनमें बहुत उमंगें रहती हैं; वह भिन्न भिन्न वैषयिक कल्पनाओंकी ओर दौड़ता रहता है और उन्हींमें रमण करता है; और हाथमें लिये हुए किसी एक कार्यपर मनको एकाग्र करना उसे कठिन जान पड़ता है।

आत्मोन्नतिकी दृष्टिसे युवकोंकी आयुका यह काल बहुत महत्वका है।

बाह्य अवयव

१६. दूसरा बाह्य वीर्यावयव जो बहुत महत्त्वका है, वह मूत्रावयव है। इसीमेंसे होकर वीर्य शरीरके बाहर निकलता है और प्रजोत्पादनके लिए गर्भाशयमें पहुँचाया जाता है। यह अवयव बहुत ही सूक्ष्म और असंख्य रक्तवाहिनियोंका बना हुआ होता है। इसमेंके मज्जातन्तु और अग्र-भाग दोनों ही बहुत अधिक सवेदनाक्षम तथा उत्क्षोभक होते हैं। इसी लिए यदि किसी कारणसे उसमें क्षोभ उत्पन्न होता है, तो उसमेंकी सूक्ष्म नलिकाओंमें रक्त ज़ोरोसे भर जाता है, जिससे वे फूल जाती हैं; स्वयं वह अवयव फूलकर मोटा और बड़ा हो जाता है; और शरीरके उस भागकी ओर रक्तका इतना अधिक प्रवाह होने लगता है कि वह अवयव बहुत ही कड़ा हो जाता है। यही कारण है कि उसमेंसे बाहर निकलनेवाला वीर्य स्त्रीके गर्भाशयतक पहुँच सकता है; और प्रजोत्पादनके लिए उसे गर्भाशय तक पहुँचानेके उद्देश्यसे ही प्रकृतिने इस अवयवकी योजना की है।

इस अवयवमें बहुत सहजमें क्षोभ उत्पन्न हो सकता है। इसके अतिरिक्त इस अवयवके शरीरसे बाहर निकले रहनेके कारण सहजमें ही इसके चेतना-युक्त होनेकी विशेष सम्भावना रहती है। नवयुवकोंके सम्बन्धमें तो इस प्रकारकी सम्भावना बहुत ही अधिक हुआ करती है। शरीरपर पहने हुए तंग कपड़ेसे, मुलायम गद्देपर लेटनेसे और पैरपर पैर रखकर बैठनेकी पद्धति आदि-जो घर्षण होता है, अथवा इसी प्रकारके और दूसरे मार्गोंसे जो सौम्य

घपण होता है, उसके कारण युवकोंको सुखद संवेदनाका भास होता है; और कुछ दिनों बाद उनके मनमें यह कल्पना उत्पन्न होने लगती है कि इस सुख-सवदनाकी पुनरावृत्ति हो; और तब उस कल्पनाकी पूर्ति करनेके लिए वे वही उपाय करने लगते हैं जो उनकी समझमें आते हैं।

इस प्रकारकी सहजमें उत्पन्न होनेवाली कल्पनाओं, दूषित कल्पनाओं और बुरी आदतवाले लड़कोंकी संगतिके साथ शरीरकी तारुण्यजन्य परिस्थिति उत्पन्न करनेवाली विशिष्ट मनोवृत्ति मिल जाती है और ऊपरसे उत्तेजक ग्रन्थोंके अध्ययन और मनोविनोदके साधनों तथा दृश्यों आदिका भी संयोग हो जाता है, जिसके फलस्वरूप बहुतसे नवयुवक वीर्यनाशके राजमार्गपर जल्दी जल्दी आगे बढ़ने लगते हैं।

हस्त-मैथुन

१७. उपस्थेन्द्रिय एक तो सहजमें क्षुब्ध होनेवाली इन्द्रिय है और दूसरे वह शरीरके बाहर निकली हुई होती है, इसलिए उसके प्रति अत्याचार करनेके अथवा उसमें क्षोभ उत्पन्न करनेके साधन युवावस्थामें सहज ही ध्यानमें आ सकते हैं और इस प्रकार उन नवयुवकोंको हस्त-मैथुन करनेकी आदत पड़ जाती है।

(१) उपस्थेन्द्रियपर अथवा उसके आसपास कहीं कोई फुन्सी या फोड़ा हो जाता है अथवा कोई ऐसा कारण उत्पन्न हो जाता है जिससे उपस्थेन्द्रियमें खुजली होने लगती है। और तब उसे खुजलाने अथवा सुहलानेके समय नवयुवकोंको इस भीषण मार्गका ज्ञान होता है और तब उसका चस्का पड़ जाता है।

(२) मुलायम और गरम बिछौनोंपर लड़कोंको सुलाया जाता है। उस समय इस बातकी सम्भावना रहती है कि लड़कोंकी उस इन्द्रियको मुलायम बिछौनोंका स्पर्श उत्तेजक और अच्छा जान पड़े।

(३) पैरपर पैर रखकर बैठनेसे और तंग कपड़े पहननेके अभ्याससे स्पर्श-सुखका चस्का लगता और बढ़ता है।

(४) बुरी संगत इसका सबसे बड़ा और प्रधान कारण है। जिन घरोंमें सब प्रकारकी उचित व्यवस्था और नियमन होता है, उन घरोंमें रहनेवाले लड़कोंको सहसा यह दुर्व्यसन नहीं लगता। परन्तु यदि घरकी व्यवस्था और

नियमन उपयुक्त और लड़कोंको ठीक मार्गपर रखनेके योग्य न हो, तो पाठ-शालामें बिगड़े हुए लड़कोंकी सोहबतसे और बोर्डिंग या होस्टल सरीखे स्थानोंमें रहनेके कारण लड़कोंको यह बुरी आदत पड़ जानेकी बहुत बड़ी सम्भावना रहती है। यह बात कल्पित नहीं है, बल्कि अनुभवसे सिद्ध हो चुकी है। अपनी बराबरीके लड़कोंके साथ खेलने और कुछ अधिक अवस्थाके लड़कोंके साथ सोनेसे भी यह बुरी आदत पड़ जाती है। और अनेक अवस्थाओंमें तो दुराचारी नौकर और अध्यापक भी लड़कोंमें यह बुरी आदत पैदा कर देते हैं।

जो नवयुवक मांस खाते हैं या अधिक मात्रामें उत्तेजक पदार्थोंका सेवन करते हैं, धूम्रपान करते हैं, अश्लील उपन्यास पढ़ते और नाटक पढ़ते या देखते हैं, सदा विवाह या प्रेम और स्त्री-पुरुषके सम्बन्धकी बातें करते हैं, अथवा जिन्हें मलबद्धताका विकार होता है, उन्हें भिन्न भिन्न कारणोंसे यह बुरी आदत पड़नेकी सम्भावना होती है।

१८. जिन नवयुवकोंको यह बुरी आदत पड़ गई हो, उन्हें उचित है कि वे संसारमें अपना मुँह न दिखलावें, अपना मुँह काला कर लें। कारण यह कि इस प्रकारके जितने बुरे व्यसन हैं, उन सबके सूक्ष्म चिह्न प्रकृतिकी ओरसे मनुष्यकी आकृतिपर बनते रहते हैं और निश्चित रूपसे बनते रहते हैं। आशा है कि यह बात अच्छी तरह ध्यानमें आ जानेपर कुछ न कुछ नवयुवक इस बुरे व्यसनसे बचनेका प्रयत्न करेंगे और उनके इस दुष्कर्ममें कुछ न कुछ बाधा अवश्य पड़ेगी।

(१) मुँहपर छोटे छोटे दाने या मुँहासे निकल आते हैं और गरदनका भाग कुछ सूजा हुआ सा दिखाई पड़ता है। (२) चेहरेपर पतली, लम्बी और गहरी रेखाएँ पड़ जाती हैं और उनके बीच बीचमें काले दागसे दिखाई पड़ने लगते हैं। ये सब लक्षण क्या बतलाते हैं? चाहे कोई कुछ कहे, पर इसमें सन्देह नहीं कि ये सब लक्षण यही सूचित करते हैं कि इस मनुष्यको यह दुर्व्यसन लग गया है। परन्तु यदि मुँहासे सारे चेहरेपर न हों और केवल मस्तकपर ही हों, तो केवल यही समझना चाहिए कि उसकी विषय-वासना बहुत तीव्र है और बीच बीचमें स्वप्न-दोष होता है। (३) यदि कोई नवयुवक स्वभावतः लज्जाशील हो, तो बात दूसरी है; परन्तु यदि किसी साधारण नव-युवकका हाथ यों ही छूनेपर ठंढा और आर्द्र जान पड़े, तो उसके शीलके सम्बन्धमें सन्देह करनेमें कोई हरज नहीं है।

मानसिक स्वरूपके भी कुछ लक्षण ऐसे हैं जो ध्यानमें रखने चाहिए। यथा (१) चरित्र-परिवर्तन। जो लड़का पहले हँसमुख, तेज, स्पष्टवक्ता और आज्ञाकारी होता है, वह इस दुर्व्यसनके कारण मलिनमुख, चिड़चिड़ा, क्रोधी, मुँह छुपानेवाला और बेवकूफ़सा बन जाता है; अकेला रहने लगता है। (२) एकान्तमें और सबसे दूर रहना। जो लड़का चार आदमियोंमें बैठनेसे घबराता हो और दूसरोंकी दृष्टि बचाकर देखता हो और सदा एकान्तमें रहता हो, उसके सम्बन्धमें भी इस दुर्व्यसनमें पड़नेकी सम्भावना रहती है। (३) अस्वाभाविक डरपोकपन और धृष्टता। जहाँ नवयुवकोंमें यह दिखलाई पड़े, वहाँ इनके स्वाभाविक और आगन्तुक भेदपर ध्यान रखना चाहिए। (४) जिन नव-युवकोंको यह दुर्व्यसन लग जाता है, वे प्रायः स्त्रियोंमें बैठना-उठना और उनके साथ बात-चीत करना अधिक पसन्द करते हैं; और विशेषतः जब स्त्रियाँ असावधान रहती हैं, तब उन्हें लुक-छिपकर देखते हैं। परन्तु इस प्रकारके नवयुवकोंमें बहुतसे ऐसे भी होते हैं जो इस प्रकारकी इच्छाको बहुत जल्दी छिपा लेते हैं। वे बहुत सावधान रहते हैं और इन सब बातोंको बहुत सफाईके साथ शिष्टसम्मत स्वरूप दे देते हैं।

१९. जो मूर्ख नवयुवक हस्त-मैथुन करते हैं, उन्हें सहजमें पहचान लेनेके कुछ और लक्षण बतला देना भी आवश्यक जान पड़ता है।

(१) यदि यह दुर्व्यसन बहुत जल्दी लगता है, तो शरीरकी बाढ़ बहुत जल्दी जल्दी होती है, और यदि देरसे लगता है, तो शरीरकी बाढ़ रुक जाती है।

(२) अधिक परिश्रम, अधिक अध्ययन, अपस्मार, कृमि, या और कोई विशिष्ट तथा स्पष्ट रोग न होनेपर भी शरीरकी अशक्तता बराबर बढ़ती जाती है, चेहरा पीला पड़ने लगता है, आँखोंके नीचेका भाग काला पड़ने लगता है और इसी प्रकारके कुछ और चिह्न दिखाई पड़ने लगते हैं। इसके उपरान्त प्रमेह तथा पांडु आदि रोगोंमें उनका रूपान्तर होने लगता है।

(३) असमयमें ही, समयसे पहले ही, उनमें प्रौढ़ता आ जाती है।

(४) हस्त-मैथुन करनेसे शरीरकी बाढ भी रुक जाती है और समय हो जाने पर भी प्रौढता नहीं आती। छाती दब और झुक जाती है। शरीर दुर्बल और शिथिल हो जाता है। स्वर कर्कश हो जाता है, उसमें

कुछ घरघराहट आ जाती है; और समय आनेपर दाढ़ी और मूँछ जितनी बढ़नी चाहिए, उतनी नहीं बढ़ती।

(५) सवेरे उठनेके समय शरीरमें बहुत सुस्ती जान पड़ती है और शिथिलता, ग्लानि, शरीरका भारीपन आदि विकार देखनेमें आते हैं।

(६) जो युवक पहले सब प्रकारसे नीरोग रहता है, वही यह दुर्व्यसन लगने पर विना किसी स्पष्ट और प्रत्यक्ष कारणके रोगी सा जान पड़ता है। उसकी पीठमें दर्द होने लगता है, पैरोंमें बल नहीं रह जाता, सिरमें भी दर्द रहने लगता है और इसी प्रकारके दूसरे अनेक विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

(७) उनके हृदयकी धड़कन अनियमित हो जाती है और हृदय-कंप होने लगता है।

(८) बैठे बैठे शरीरका कोई एक अंग ठंडा होकर सुन्नसा हो जाता है।

(९) कोई रोग न होनेपर भी और मिट्टी खानेकी आदत न होनेपर भी भूख अनियमित हो जाती है।

(१०) रातके समय वह जिस बिस्तरपर सोता है, उसपर सवेरे वीर्यके दाग दिखाई पड़ते हैं। ये दाग स्वप्न-दोषके कारण भी हो सकते हैं।

(११) ऐसे युवकोंके अंगोंमें स्थिरता नहीं होती। यदि वे दो उँगलियोंसे पेन्सिलका अगला भाग पकड़कर सामने रक्खें, तो वे उँगलियाँ काँपती हुई दिखाई पड़ती हैं और चलनेमें उनके डग स्थिर रूपसे नहीं पड़ते।

२०. जिस नवयुवकको इस प्रकारके हस्त-मैथुनकी आदत पड़ गई हो, वह चावलमेंकी उस कँकड़ीके समान है, जो देखनेमें सफेद होनेके कारण यों तो दिखाई नहीं पड़ती, परन्तु दाँतके नीचे आते ही उसको तोड़ डालती है। माता-पिताको उचित है कि वे अपने बालकोंकी संगतिमेंसे ऐसे बालकोंको उसी प्रकार अलग कर दें, जिस प्रकार चावलमेंसे कँकड़ी अलग कर दी जाती है।

यदि इस प्रकारका आत्मघाती मनुष्य केवल अपना घात करके ही शान्त रहता, तो कोई बड़े हरजकी बात नहीं थी। परन्तु कठिनता तो यह है कि वह आत्मघातके मार्गपर अपनी जान-पहचानके दूसरे नवयुवकोंको भी अवश्य ले जाता है। यह प्लेगके समान संसर्गजन्य रोग है। ऐसा रोगी स्वयं तो मरता ही है, पर उसके साथ ही उन लोगोंको भी मरना पड़ता है जो उसके संसर्गमें आते हैं।

भारतीय समाजका शारीरिक ह्रास दिनपर दिन बहुत तेजीके साथ बढ़ता जा रहा है और जीवन-कलह भी दिनपर दिन अधिक उग्र रूप धारण कर रहा है। यदि इन दोहरी कठिनाइयोंसे बचकर समाजको जीवित रहना हो, तो सबसे पहले उसके लिए यह उचित है कि वह नवयुवकोंके शारीरिक ह्रासको रोकनेके लिए तत्पर हो।

इस बातमें जरा भी सन्देह नहीं है कि हस्त-मैथुन और स्वप्न-दोष आदिसे जो वीर्यनाश होता है, वह आजकलके नवयुवकोंके शारीरिक ह्रासका एक बहुत बड़ा कारण है। इसलिए नवयुवकोंके अभिभावकों तथा शिक्षकोंको अपने लड़कों और विद्यार्थियोंपर बहुत कड़ी नजर रखनी चाहिए। उन्हें यह देखते रहना चाहिए कि वे किस प्रकारकी पुस्तकें आदि पढ़ते हैं और किस प्रकारके लड़कोंके साथ उठते बैठते हैं। यदि शिक्षक लोग इस दृष्टिसे अपनी कक्षाके विद्यार्थियोंपर ध्यान देंगे, तो उन्हें अवश्य ही बहुत आश्चर्यजनक अनुभव होगा।

कुछ लोग यह समझते होंगे कि शिक्षकोंसे यह काम करनेके लिए कहना मानो उनपर व्यर्थका एक नया भार डालना है। और जहाँ अभिभावक लोग उपेक्षा करते हों, इसमें सन्देह नहीं कि वहाँ शिक्षकोंसे विशेष आशा करना भी ठीक नहीं है। परन्तु फिर भी अभिभावक और शिक्षक दोनों ही यह कार्य करनेके लिए योग्य और समर्थ हैं। और उन दोनोंका ध्यान इस बातकी ओर आकृष्ट कर देना हमारा कर्त्तव्य है।

स्वप्न-दोष

स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः।
स्नात्वार्कमर्चयित्वा त्रिः पुनर्मामित्यृचं जपेत्॥

—मनु २, १८१

२१. मनुने कहा है कि यदि इच्छा न रहते हुए भी किसी ब्रह्मचारीका स्वप्नमें शुक्रपात हो जाय, तो उसे तुरन्त स्नान करना चाहिए और सूर्यसे प्रार्थना करनी चाहिए कि फिर कभी ऐसा न हो। इसके उपरान्त नीचे लिखी ऋचाका तीन बार जप करना चाहिए—

पुनर्मामैत्विन्द्रियं पुनरायुः पुनर्भगः पुनर्ब्राह्मणमैतुमा पुनर्द्रविणमैतुमा।

बहुतसे लोग यही समझते हैं कि भरी जवानीके दिनोंमें यदि वीर्य स्वय जान-बूझकर बीच बीचमें शरीरके बाहर न निकाला जाय, तो वह प्राकृत रूपसे स्वप्नकी अवस्थामें, अनजानमें, आपसे आप अवश्य शरीरके बाहर निकल जायगा। परन्तु यह कल्पना बहुत ही भ्रमपूर्ण है। स्वप्नदोष न तो स्वाभाविक ही है और न अपरिहार्य ही है। जब नवयुवकोंके मनमें कामकी इच्छा या वासना होती है, तब उसके परिणामस्वरूप स्वप्नदोष होता है। नवयुवकोंके मनमें विषय-वासना बराबर अपना स्थान किये रहती है। इसी मानसिक उत्तेजनके कारण वीर्यावयवके मज्जातन्तु क्षुब्ध होते हैं और नींदमें अथवा अच्छी तरह जागे रहनेकी दशामें भी वीर्यनाश हो जाता है। यह सब विषय-वासनामें बहुत अधिक लिप्त रहनेका ही परिणाम है।

यदि पूर्ण युवावस्थामें महीनेमें कभी एक दो बार स्वप्नकी अवस्थामें वीर्य-नाश हो जाय, तो उसे नितान्त अक्षम्य नहीं समझना चाहिए; क्योंकि इससे कोई विशेष बुरा परिणाम नहीं होता। तो भी जिन नवयुवकोंको इस प्रकार कभी कभी स्वप्न-दोष हो जाता हो, उन्हें भी अपनी मानसिक पवित्रता-पर विशेष ध्यान देना चाहिए। यदि दो महीनेमें एक बार भी इस प्रकार वीर्यनाश हो जाय, तो भी उसे बुरा ही समझना चाहिए। हाँ, यह समझा जा सकता है कि उसका स्वरूप सौम्य है या नितान्त अनिष्टकारक है। यदि स्वप्न-दोष होनेके उपरान्त नींद खुलनेपर शरीर और मनपरसे एक प्रकारका भार हटा हुआ जान पड़े और किसी प्रकारकी अस्व-स्थता या शिथिलताका अनुभव न हो, तो यह कहना अनुचित न होगा कि ऐसे नवयुवकको अपने मानसिक अपराधका जो प्रायश्चित्त करना पड़ा है, वह सौम्य है। परन्तु यदि नींद खुलने पर बहुत अधिक शिथिलता जान पड़े, पेटमें दर्द हो, सिर बहुत भारी जान पड़ता हो, कमरमें ढीलापन जान पड़ता हो, तो यही समझना चाहिए कि इस विकारने बहुत उग्र स्वरूप धारण कर लिया है। समय समयपर होनेवाली कोष्ठबद्धता और गुड़, गरी या मूँगफली सरीखे कुछ उष्णवीर्य पदार्थ अधिक मात्रामें खानेसे भी कभी कभी इस प्रकारका वीर्यनाश हो सकता है।

दूषित मनोवृत्तिका परिणाम

२२. यदि स्वप्न-दोषके कारण बार बार वीर्यनाश होने लगे और अनिष्ट भी स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगें, तो ये दोनों बातें किसी बड़े स्थानिक

विकारका भी परिणाम हो सकती हैं। परन्तु अधिकांशमें सम्भावना इसी बातकी रहती है कि वह अत्यन्त विषय-प्रवण मनोवृत्तिका ही परिणाम हो। यह बात बहुत ही स्पष्ट और निर्विवाद है कि मानसिक विकारों और शारीरिक क्रियाओंका परस्पर बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है*। मनमें विषयकी वासना उत्पन्न होते ही वीर्येन्द्रियमें क्षोभ होता है और शरीरमें बड़ी तेजीके साथ वीर्य उत्पन्न होने लगता है। जब इस प्रकार शरीरमें एकाएक और आवश्यकतासे अधिक वीर्यका संग्रह होने लगता है, तब प्रकृतिको उसे बाहर निकालनेकी आवश्यकता प्रतीत होने लगती है। बहुत से लोग ऐसे होते हैं, जो कभी स्त्रीके साथ सम्भोग नहीं करते; परन्तु ऐसे लोग भी इसी प्रकार अपने वीर्यका नाश कर डालते हैं। ध्यानमें रखनेकी मुख्य बात यही है कि स्त्रीके साथ प्रत्यक्ष रूपसे सम्भोग करनेके कारण वीर्यका जो नाश होता है, उसमें वृषणके वीर्यका बहुत कुछ अंश रहता है। परन्तु इस प्रकार स्वप्नदोषमें जो वीर्य शरीरसे बाहर निकलता है, उसमें शरीरान्तर्गत वीर्यावयवोंके वीर्य-रसका अंश बहुत अधिक होता है और शरीरके स्वास्थ्य तथा पूरी पूरी वृद्धिके लिए यही अंश शरीरमें फिरसे सोखा जाता है। तात्पर्य यह कि स्वप्नदोषमें वीर्यके वास्तविक और संजीवनप्रद अंगका ही नाश होता है।

मनुष्यका शरीर दिन रात छीजता रहता है। वह सब छीज पूरी होनी चाहिए और समय पड़नेपर काम आनेके लिए बहुत कुछ फालतू शक्ति भी शरीरमें रहनी चाहिए। यह छीज पूरी करने और शक्ति-संग्रह करनेका केवल एक ही मार्ग है। और वह यह कि शरीरमें नवजीवनप्रद वीर्य तैयार होने दिया जाय और वह शरीरमें धारण किया जाय।

चाहे कोई और कितने ही कारण क्यों न बतलावे, परन्तु स्वप्न-दोष हमारी दूषित मनोवृत्तिका ही परिणाम है और वह अत्यन्त अनिष्टकारक तथा असभ्य है। इसका कारण यह है कि इससे शरीरका स्वास्थ्य बहुत धोखेमें पड़ जाता है और इसका परिणाम बहुत ही बुरा होता है। परन्तु यदि विचार शुद्ध रक्खे जायँ, तो स्वप्न-दोष सहजमें रोका जा सकता है।

---

* चित्तायत्तं नृणां शुक्रं शुक्रायत्तं च जीवितम्।
तस्माच्छुक्रं मनश्चैव रक्षणीयं प्रयत्नतः॥—हठयोगप्रदीपिका।

वेश्यागमन

पर-नारी पैनी छुरी, तीन ठौरतें खाय।
धन छीजै, जोवन हरै, मरे नरक ले जाय॥

२३. वीर्य नाश करनेका एक और साधन वेश्यागमन है, जो बहुत ही गन्दा, लज्जास्पद और अनिष्टकारक है। यह साधन इतना अधिक गन्दा और लज्जास्पद है कि यहाँ उसका थोड़ासा उल्लेख करना भी हमें कष्टदायक जान पड़ता है।

वीर्यनाश और वीर्य-संजीवनकी दृष्टिसे परस्त्री-संग, वेश्या-संग अथवा स्वस्त्री-संगका भेद करनेका कोई बहुत बड़ा कारण नहीं है। इनमेंसे चाहे जो संग किया जाय, वीर्यका नाश एक ही प्रकारसे होता है। यदि कोई अन्तर है, तो वह केवल इतना ही हो सकता है कि वेश्याओंके साथ गमन करनेवाला अपनी कुछ माताओं और बहनोंका जीवन मिट्टीमें मिलाता है और कल्पनातीत हानिकारक रोगोंका प्रसार करनेमें सहायता देता है। वेश्याओं और उपदंश (गर्मी) तथा प्रमेह आदि रोगोंका साहचर्य करीब करीब सभी जगह और अपरिहार्य है। उपदंश और प्रमेह आदि रोग बहुत ही कष्टदायक होते हैं, जन्मभर रह-रहकर उभड़ते हैं और अत्यन्त स्पर्शजन्य तथा आनुवंशिक माने गये हैं।

इसी लिए जो लोग वेश्या-गमन करते हैं, वे अपने शरीरमें इस प्रकारके अत्यन्त कष्टदायक और जन्मभर यातना देनेवाले रोग लगा लेते हैं। साथ ही वे अपने साथ सम्बन्ध रखनेवाले प्रिय और परोपकारी मित्रों, अनाथ और निराश आश्रितों, याचकों और नौकरों, निरपराध बच्चों और पवित्रशील पत्नीको अथवा इनमेंसे कुछ लोगोंको इस रोगके आगे बलि चढ़ा देते हैं और भविष्यमें जन्म लेनेवाले बालकोंके अंगोंमें इन रोगोंके बीज डाल देते हैं। यदि जरा सहृदयतापूर्वक और सहानुभूतिपूर्ण वृत्तिसे विचार किया जाय, तो प्रत्येक व्यक्ति सहजमें इस बातकी कल्पना कर सकता है कि यह अपराध कितना भीषण और राक्षसी है। हम तो ऐसे दुर्व्यसनमें फँसे हुए मनुष्यको आत्मद्रोही, समाजद्रोही और हत्यारा ही समझते हैं।

धर्म-नीतिसे अनुमोदित वीर्यनाश !

आहारो मैथुनं निद्रा सेवनात्तु विवर्धते ।

२४. अब हम इस पुस्तकके मुख्य विषयकी ओर आते हैं। अब वीर्य-नाशके उस मार्गका विचार करते हैं, जो विवाहित नवयुवकोंके लिए धर्म और कानून दोनोंके द्वारा मान्य और अनुमोदित है। वीर्यनाश चाहे अनीतिमान् मार्गसे हो और चाहे नीतिमान् मार्गसे, उसका जो निश्चित दुष्परिणाम है, वह कभी टल नहीं सकता। केवल उसके गौण तथा आनुषंगिक परिणामोंमें ही कुछ अन्तर पड़ेगा। यदि अपने जमा और खर्चकी दृष्टिसे देखा जाय, तो मालका चोरी जाना, कर और दान ये तीनों एक ही वर्गमें आ जायँगे। अर्थात् इन तीनोंसे ही हमारे पासका धन घटता है। इसी प्रकार यदि वीर्य-नाशकी दृष्टिसे देखा जाय, तो हस्त-मैथुन, स्वप्न-दोष, वेश्या-गमन और स्वस्त्री-गमन सब एक ही वर्गमें डालने पड़ेंगे।

बहुतसे योग्य और शीलवान् गृहस्थ ऐसे होंगे, जो किसी अनीतिमान् व्यसनके आगे बलि न पड़ेंगे। परन्तु आश्चर्यकी बात यह है कि ऐसे लोगोंमेंसे भी बहुतसे ऐसे आदमी निकल आवेंगे, जिनकी विषय-वासना इतनी प्रबल होगी कि वे अपनी कामेच्छा प्रत्येक समय तृप्त करना चाहेंगे। वे समझते हैं कि यह इच्छा या तो दैवी है और या इसकी पूर्त्ति पूर्ण रूपसे अनिवार्य है और अपनी इस इच्छाकी पूर्त्तिके आवेशमें वे अपनी विवाहिता पत्नीका निःशंक होकर यथेच्छ उपयोग करते हैं।

पुरुष तो अपने मनमें यह समझता है कि अपनी स्त्रीका यथेच्छ उपयोग करनेका मुझे पूरा पूरा अधिकार है; और स्त्रियोंमें पति-सेवाका भाव बहुत प्रबल होता है। इन दोनो बातोंके योगसे इस इच्छाका प्रतिबन्ध होनेके बदले इसे और अधिक उत्तेजना मिलती है।*

---

* हिंदुस्तानमें या सारे ससारमें निःसत्त्व मनुष्योंके समुदाय च्यूँटियोंकी तरह अनन्त हो जायँ, तो ऐसे लोगोंसे हिन्दुस्तानका अथवा ससारका क्या उद्धार हो सकता है ?...... यह रोग मृत्युके साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करता है और जब तक मृत्यु नहीं आती, तब तक हमारा मन पागलोंकी तरह इधर उधर घूमा करता है। इसलिए विवाहित स्त्री-पुरुषोंका आवश्यक कर्तव्य यह है कि वे अपने विवाहका मिथ्या अर्थ न करें, बल्कि शुद्ध अर्थ करते हुए केवल उसी समय परस्पर समागम करें जिस समय सचमुच उनके आगे सन्तति न हो और केवल वारिसकी इच्छासे ही ऐसा करें। —महात्मा गाँधी

२५ किसी ऐसी कन्याकी ओर देखिए जिसकी अवस्था विवाह करनेके योग्य हो गई हो। उसके गालोंपर गुलाबी रंगत दिखलाई पड़ेगी और उसकी आँखोंमें बहुत तेज दिखलाई पड़ेगा। उसके हाथ ऊबदार और आर्द्रताहीन लगेंगे और उसके मुखपर स्वच्छन्द हास्य दिखलाई पड़ेगा। उसकी बोल-चाल बहुत ही मनोहर और भली जान पड़ेगी। विवाहके योग्य तरुण कन्या चाहे काली हो आर चाहे गोरी, सुस्वरूप हो अथवा कुरूप, उसमें ऊपर बतलाये हुए सब लक्षण अवश्य ही मिलेंगे और उसका मुख सन्तोपयुक्त, आनन्दप्रद और स्फूर्तिदायक दिखाई पड़ेगा।

अब उसी लड़कीको विवाह हो जानेके उपरान्त उस समय देखिए, जब वह रजस्वला हो जाय और अपने पतिके साथ सम्भोग करने लगे। अब उसमें वह पहलेकी फूलकी पंखड़ीकी सी प्रफुल्लता नहीं दिखाई पड़ेगी। उसके उठने बैठनेमें अब मन्दता दिखाई पड़ने लगेगी। उसकी आँखोंके नीचेका भाग अब काला दिखाई देने लगेगा। उसके हाथ बरफकी तरह ठंडे लगेंगे। पहले उसके शरीरमें जो तेजी थी, उसके बोलने चालनेमें जो चपलता और मनोहरता थी और उसके स्वभावमें जो स्वच्छन्दतापूर्ण सुख था, अब ऐसा जान पड़ेगा कि मानों उन सबपर पानी फिर गया।

अब और चार वर्ष बाद उसे देखिए। उसकी कमर कुछ झुकी हुई सी जान पड़ेगी और उसके अग शिथिल होकर झूलते हुए दिखाई पड़ेंगे। उसके पैर कुछ टेढ़े जान पड़ेंगे। उसे सदा ऐसा जान पड़ता होगा कि आजकल तबीयत कुछ ठीक नहीं रहती। उसकी गोदमें एक रोता हुआ बच्चा दिखाई पड़ेगा और पैरोंके पास एक ऐसा दूसरा बच्चा लड़खड़ाता होगा, जिसके हाथ-पैर लकड़ीकी तरह सूखे हुए होंगे। अब रोग, भोग और विरागके कारण उसका सारा शरीर बेजान हो गया होगा। इस प्रकारकी करुणाजनक मूर्तियाँ हमें सभी जगह दिखाई पड़ेंगीं। ऐसा क्यों होता है? उसकी स्थितिमें इस प्रकारका परिवर्त्तन होनेका क्या कारण होता ह?

अत्याचार, अति प्रसंग, अति संग

२६. बहुतसे नवयुवकोंकी माताएँ यह कहकर अपने मनका दुःख प्रकट करती हुई दिखाई पड़ेंगीं कि "अब मेरे लड़केमें वह पहलेकी सी ताकत और नहीं रह गई।" ऐसे अनेक पिता मिलेंगे, जो यह कहकर अपने लड़केके

सम्बन्धमें निराशा, विरक्ति और खेद प्रकट करते होंगे कि "मैं तो समझता था कि यह लड़का बड़ा होकर किसी योग्य होगा; पर अब तो उसकी पहले-वाली तेजी और बल भी चला गया।"

माता-पिताके लिए इस प्रकार दुःखी होने और विरक्ति तथा निराशा प्रकट करनेका अवसर क्यों आता है?

बहुतसे लड़के ऐसे होते हैं जो कुछ साधारण वयके होने तक बहुत ही तेज और होशियार होते हैं, जिनकी धारणा-शक्ति बहुत तीव्र होती है और जो बहुत अधिक कुशल तथा कार्यक्षम होते हैं। परन्तु ज्यों ज्यों उनकी अवस्था चढ़ती जाती है और उन सबका विवाह होता जाता है, त्यों त्यों वे दुबले, डरपोक, सुस्त, अकर्मण्य और रूखे होते हैं और हाथपर हाथ रखकर बैठे रहते हैं। उनके सम्बन्धमें पहले जो यह आशा की जाती थी कि आगे चलकर ये बहुत योग्य और कुशल होंगे, वह आशा व्यर्थ होती जाती है। ऐसा क्यों होता है?

जिस वयपर पहुँचनेपर युवकों और युवतियोंसे यह आशा की जाती है कि इनमें सजीवता, होशियारी, काम करनेका उत्साह, निर्भयता, तेजी, और मिलनसारी आदि गुण आवेंगे, उस वयमें उनमें इन सबके विपरीत गुण दिखलाई पड़ने लगते हैं। स्वय उन युवकों और युवतियोंको भी पहले जो सुख-स्वप्न दिखाई देते थे, वे सब व्यर्थ होतेसे जान पड़ते हैं, और उलटे उनमें वैफल्य, विराग और निराशा आदि उत्पन्न होने लगते हैं। ऐसे युवकों और युवतियोंमें अब वह पहलेकी सी प्रेमपूर्ण और निरतिशय एक-रसता नहीं दिखाई पड़ती। ऐसा क्यों होता है?

इस प्रश्नका एक ही उत्तर है। वह उत्तर एक ही शब्दमें है और स्पष्ट तथा सरल है। वह उत्तर है—अत्याचार, अति प्रसंग, अति संग।

जगकी धूल हाथ रह जाती,
मनकी आशा मनको खाती,
भूत-भावना रोती जाती,
मुँदी-खुली आँखोंके आगे
सुनसान मैदान।

यह सब क्यों होता है? इसका कारण है—अतिरेक, अत्याचार, अति प्रसंग, अति संग।

दीपकपर जो जलता है, वह है पतंग बिलकुल अनजान
आटेके संग काँटा खाकर, भोली मछली देती प्रान ॥
पर जब विषय-वासनामें, पड़ जाता है यह मनुज सुजान ।
और न उसको तजता है, तब समझा मोह महाबलवान् ॥

२७. इस प्रकार जब लड़का तरुणावस्था तक पहुँचने लगता है, तब पहले तो हस्त-मैथुन और स्वप्न-दोष तथा उसके उपरान्त इन्हींकी जोड़ीके वेश्या-गमन और स्वस्त्री-गमनके चारों मार्गोंमेंसे एक अथवा अनेक मार्गोंसे चलता हुआ वीर्यहानिके राजमार्गपर आगे बढ़ने लगता है।

इनमेंसे हस्त-मैथुन और वेश्या-गमन किसी न किसी कारणसे लज्जास्पद व्यसन समझे जाते हैं; परन्तु स्वप्नदोष अधिकांशमें एक बहुत बड़ी सीमा तक क्षम्य और अपरिहार्य माना जाता है। और स्वस्त्रीगमनका अतिरेक भी क्षम्य और इष्ट समझा जाता है। परन्तु ये चारों ही मार्ग वीर्यनाशके हैं। ये चारों अक्षम्य हैं और इन सबसे अनिष्ट होता है। इनमेंसे एक भी मार्ग किसी आधारपर इष्ट नहीं ठहराया जा सकता। यदि तर-तमवाला भाव काममें लाकर इनमेंसे कोई मार्ग औरोंसे कुछ अच्छा ठहराया जाय और उसका समर्थन किया जाय, तो वह आत्म-घात और आत्म-वंचनाका मार्ग होगा।

हस्त-मैथुन और वेश्या-गमन पूर्ण रूपसे निन्दनीय तथा घातक हैं। स्वप्न-दोष टाला जा सकता है और इससे अपनी रक्षा की जा सकती है। विवाहित स्त्री-प्रसंग यदि अत्यन्त, मित परिमाणसे अधिक, हो जाय, तो वह अनिष्टकारक और निन्दनीय है।

हमें विशेषतः इस अन्तिम मार्गका विचार करना है। इसका कारण यह है कि इस चौथे मार्गसे केवल वही समझदार और सयाने नवयुवक अपनी हानि करते हैं, जो अपनी सुशीलताके कारण आरम्भके तीन मार्गोंका मोह छोड़नेकी मानसिक शक्ति रखते हैं और जो एक निरपराध देवताके सुख-दुःख का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेनेके लिए तैयार रहते हैं। ऐसे लोग बहुत अंशोंमें अज्ञानसे ही अपनी यह हानि कर बैठते हैं। वे पवित्र विवाह-सम्बन्धकी तो विडम्बना या दुर्दशा करते हैं, और स्त्री-पुरुषके स्वर्गीय स्वरूपवाले प्रेमका नाश करते हैं। वे अपने भावी कर्तव्योंका सत्यानाश करते हैं और

आगे आनेवाली पीढ़ीको दुर्बल बनाते हैं। अब हम स्त्री और पुरुषके पवित्र सम्बन्धका विचार करते हैं।

स्त्री-पुरुष-सहवास

अर्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा।

२८. मनुष्यके जीवनको सह्य या निर्वाहयोग्य, रहस्यमय और सुखपूर्ण बनानेमें लिंगभेद बहुत बड़ा कारण है। समाजके नष्ट होनेके भयसे समाजशास्त्रमें अविवाहित आयुष्य-क्रम अमान्य किया गया है। नीतिशास्त्रमें ऐसा आयुष्य-क्रम इसलिए मान्य नहीं है कि अविवाहितोंकी बढ़ती हुई संख्यासे समाजमें व्यभिचार बढ़ेगा। और इसी लिए इन दोनोंमें सामंजस्य स्थापित करनेवाले और परमार्थका चिन्तन करनेवाले धर्मशास्त्रमें भी वह श्रेयस्कर नहीं माना गया है। परन्तु साथ ही उस वैद्यक शास्त्रमें भी अविवाहित आयुष्य-क्रम मान्य नहीं है, जो समाजकी धारणा अथवा रक्षा या व्यभिचारका विशेष विचार नहीं करता। इसका कारण यह है कि वैद्यक शास्त्रकी दृष्टिसे देखनेपर भी अधिकांशमें यही निश्चित होता है कि अविवाहित पुरुषका दीर्घायु और सर्वांगपूर्ण होना एक प्रकारसे असम्भव ही है। स्त्री और पुरुष दोनों स्वयं अलग पूर्ण नहीं हैं, बल्कि वे एक दूसरेके पूरक और पोषक हैं और इसी लिए उन दोनोंका परस्पर साहचर्य होना आवश्यक है और समाजशास्त्र, नीतिशास्त्र तथा धर्मशास्त्र तीनोंकी दृष्टिसे यह साहचर्य विवाहकी रीतिसे होना चाहिए।*

विद्युत्शक्ति सदा धन और ऋण इन दो प्रवाहोंके मेलसे अपना कार्य करनेमें समर्थ होती है। ठीक इसी प्रकार मानवी जीवनको भी प्रकाशित, कार्यक्षम और स्वयंपूर्ण बनानेके लिए स्त्री और पुरुषके धन और ऋण जीवन-विद्युत्-प्रवाहका संगम करनेकी आवश्यकता होती है। पुरुष धन-विद्युत-प्रवाह है

---

* ऊपर-नीचे आगे पीछे जिधर दृष्टि यह जाती है।
वहीं देखनेमें लोगोंके बात सदा एक आती है॥
जब संगम नर और नारीका पहले मनमें होता है॥
तभी प्रकृतिके अटल नियममें उदय सृष्टिका होता है॥
(—श्रीमती लक्ष्मीबाई टिळकके एक पद्यके आधारपर)

और प्रेरक है । स्त्री ऋण-विद्युत्-प्रवाह है और संग्राहक है । जब इन दोनोंका मिलाप होगा, तभी इनमें विश्वचैतन्यका प्रवाह प्रवाहित होगा । परन्तु इसके लिए दोनोंके ही समस्त गुणोंका मेल होना आवश्यक होता है । दोनोंकी समस्त वृत्तियोंका ऐसा मिलाप होना चाहिए, जो आपसमें एक दूस-रेका विरोधी न हो, बल्कि पोषक हो और उन दोनोंमें सामंजस्य या एकरसता आनी चाहिए । यदि दोनोंमें स्वभाव-वैचित्र्य हो, तो भी काम चल जायगा । परन्तु यदि यह वैचित्र्य परस्पर पोषक और अविरोधी होगा, तो वह सम्बन्ध स्वर्गीय तथा सुखद होगा और अन्तमें उसका परिणाम अपूर्व सुखदायक होगा ।

यह एक रासायनिक मिश्रण है

२९. मनुष्य प्राणी या उसका स्थूल शरीर भिन्न भिन्न रासायनिक द्रव्योंकी प्रक्रियासे बना हुआ है । एक मनुष्यसे दूसरे मनुष्यमें जो विचित्रता देखनेमें आती है, वह इन्हीं रासायनिक मिश्रणोंके भेदके कारण उत्पन्न होती है । मनुष्यका सूक्ष्म मनोमय देह, समस्त सूक्ष्म स्थिति और शक्ति इन्हीं रासाय-निक प्रक्रियाओंके सूक्ष्म रूप हैं । तात्पर्य यह कि दो व्यक्तियोंका सहवास एक नवीन रासायनिक मिश्रण होता है ।

रसायन शास्त्रके ज्ञाता यह बात अच्छी तरह जानते हैं कि बहुतसे रासा-यनिक द्रव्य ऐसे होते हैं, जो स्वतः पूर्णरूपसे निरुपद्रवी होते हैं । परन्तु कुछ द्रव्य ऐसे भी होते हैं जिनमें यदि दो विशिष्ट निरुपद्रवी द्रव्योंका मिश्रण कर दिया जाय, तो वह मिश्रण एक भीषण विष बन जाता है । कुछ द्रव्य ऐसे भी होते हैं जिनका मिश्रण कभी हो ही नहीं सकता । वे सदा एक दूसरेके विरोधी और आपसमें झगड़ा करनेवाले ही रहेंगे ।

व्यवहारमें भी यही बात देखनेमें आती है । नमक, दूध और चीनी ये तीनों ही चीजें ऐसी हैं, जो शरीर-धारणके लिए आवश्यक और पोषक हैं । जब दूधमें चीनी पड़ जाती है, तब उसका स्वाद कैसा आनन्ददायक हो जाता है । परन्तु नमक और दूधका कभी मेल नहीं बैठता । जब दूधमें नमक मिल जाता है, तब वह विष ही हो जाता है । इसी प्रकार तेल और पानी कभी मिलकर एक नहीं होते । वे सदा एक दूसरेके विरोधी रहते हैं, और ऐसा जान पड़ता है कि दोनों एक दूसरेको नष्ट करनेके लिए उत्सुक रहते हैं ।

इसी प्रकार पहलेसे कभी यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता कि दो भिन्न भिन्न व्यक्तियोंका, स्त्री और पुरुषका, संयोग सुखकारक होगा या नहीं। लड़का और लड़की दोनों ही बहुत अच्छे स्वभावके, मिलनसार और लोगोंसे प्रेमका व्यवहार करनेवाले होते हैं। परन्तु फिर भी यह आवश्यक नहीं है कि उन दोनोंका वैवाहिक जीवन-क्रम सदा सुखकारक ही हो । इसके विपरीत अनेक अवसरोंपर यह भी देखनेमें आता है कि ऐसे युवक और युवतियाँ भी आपसमें एक दूसरेके साथ प्रेम-सूत्रमें बद्ध हो जाती हैं जिनमें किसी प्रकारकी शारीरिक अथवा गुणसंबंधी मोहकता नहीं होती। इसका कारण यह होता है कि शारीरिक और मानसिक दोनोंके परस्पर पोषक साम्य और वैधर्म्यके कारण उनमें आकर्षण उत्पन्न हो जाता है। यदि यह आकर्षण शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकारका हो, तो उनका सम्बन्ध पूर्ण तथा स्थायी रूपसे सुखकारक हो जाता है । यदि आकर्षण शारीरिक तथा वैषयिक हो, तो वह और भी शीघ्र हो जाता है।

नीच स्त्रैण

३०. हमें अपने चारों ओर बहुतसे ऐसे लोग भी दिखलाई पड़ते हैं जो कहा करते हैं कि "अजी कैसा शुद्ध प्रेम ! तुम भी कहाँकी स्वर्गीय एकरसता ले बैठे !" ऐसे लोग प्रायः यही समझते हैं कि स्त्री और पुरुषका सम्बन्ध केवल विषय-वासनाकी तृप्तिके लिए होता है और वे लोग इसी विश्वासके अनुसार आचरण भी करते हैं । कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो मुँहसे तो इस प्रकारकी बातें नहीं कहते, परन्तु जिनके आचरण और व्यवहार आदिसे यही सिद्ध होता है कि ये इसी सिद्धान्तके माननेवाले हैं । बहुतसे लोगोंके मनकी रचना तो इतनी दूषित होती है कि स्त्री और पुरुषका नाम सुनते ही उनका ध्यान काम-वासनाकी ओर चला जाता है और उसकी तृप्तिके सिवा उन्हें और कुछ सूझता ही नहीं।

ऐसे लोगोंको सदा स्त्रियोंकी और उनके सम्बन्धकी बातचीत बहुत अच्छी लगती है । जहाँ कोई स्त्री उनके सामने आती है, बस वे उसीकी ओर देखने लगते हैं और उसीके स्वरूपका विचार करने लगते हैं। उनकी प्रवृत्ति ही कुछ इस प्रकारकी होती है। वे स्त्रियोंके स्वरूपके साथ साथ उनके सद्गुणोंकी भी प्रशंसा करते है। वे सदा स्त्रियोंके सम्बन्धमें ही बात-

चीत और विचार करते रहते हैं। वे परस्त्रियोंके साथ शारीरिक अतिप्रसंग करते हैं। और यदि किसी कारणसे उनमें इतना साहस या सामर्थ्य नहीं होता, तो वे मानसिक अतिसंग करके ही किसी प्रकार अपना सन्तोष करते हैं। इस विषयमें जिन लोगोंका स्वभाव उनके समान होता है, उनके साथ वे मुख्यतः इसी विषयपर बातें किया करते हैं। उनके मनमें कभी स्त्रियोंके सम्बन्धमें कोई ऊँची और अच्छी कल्पना नहीं उठती। परन्तु जब कभी ऐसी कल्पना उठती है, तब वे उसे बहुत ही उत्कृष्ट रीतिसे व्यक्त करते हैं। परन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाय, तो उसमें भी उनकी स्त्रैणताकी छटा दिखाई पड़े बिना नहीं रहती।

कुछ ऐसे स्त्रैण भी देखनेमें आते हैं, जिनकी तीव्र स्त्रैणवृत्ति केवल अपनी स्त्री तक ही परिमित रहती है। उनकी स्त्रैणता अपनी स्त्रीको छोड़कर अन्य स्त्रियोंकी ओर नहीं जाती। परन्तु ऐसी एकनिष्ठ स्त्रैणता विरली ही होती है और निर्विवाद एकनिष्ठ स्त्रैणता तो और भी अधिक विरली होती है। बहुतसे उदाहरण ऐसे ही मिलते हैं, जिनमें दूसरी अनेक मनोवृत्तियोंके समीकरणसे इस प्रकारकी स्त्रैणता अगत्या व्यक्त नहीं हो सकती है। *

स्त्रियोंकी बात पुरुषोंसे अलग है

३१. स्त्रियोंका प्रेम बहुत वैषयिक नहीं होता। प्रायः स्त्रियाँ सम्भोगके लिए उत्सुक नहीं रहतीं; हाँ पुरुषके साथ रहनेको अवश्य उत्सुक होती हैं। बिना स्त्रीके साथ सम्भोग किये पुरुषोंकी काम-वासना तृप्त नहीं होती और सम्भोगके सिवा उस वासनाका और कोई विशेष अस्तित्व भी नहीं होता। परन्तु स्त्रियोंकी काम-वासना केवल पुरुषके सहवास या साथ रहनेके लिए होती है, उनके साथ सम्भोग करनेके लिए नहीं होती। उन्हें कोई और ज्यादा चाह नहीं होती। स्त्री स्वभावतः प्रेम करनेवाली होती है, और जब उसे अपने प्रेमके लिए कोई अच्छा स्थान मिल जाता है, तब वह उसी जगह अपने हृदयको विश्राम देती है।* स्त्री अपने लिए ऐसा पुरुष, ऐसा प्राणनाथ

---

*वही शुद्ध अरु व्यापक प्रेम।
विषय-वासना मिले न जामें, युक्ति रहहिं सब दूर।
अपनी उपमा आप जगतमें, आपहिमहँ भरपूर॥

चाहती है, जो उसका हृदयेश्वर बन सके, जिसके साथ वह प्रेम कर सके, जिसपर निर्विकल्प चित्तसे अवलम्बित रह सके, जिसे वह अपना जीवन और मन सोंप सके और जिसके साथ वह अपनी स्वच्छन्द इच्छाके अनुसार व्यवहार कर सके। इस प्रकारके पुरुषके साथ स्त्री सचमुच हृदयेश्वरके नातेसे व्यवहार करेगी और उस पुरुषको पति-देव समझकर उसका पूजन करेगी। वह जन्म भर उसके चरणोंकी दासी होकर रहेगी। वह अपने मनोहर हाव-भावोंसे, सदा साथ रहनेकी दुर्दमनीय उत्सुकतासे और प्रमादशून्य तत्परतासे पुरुषका जीवन स्नेहार्द्र और प्रेममय किये बिना नहीं रहेगी।

परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि पुरुषमें स्त्रीके साथ रहनेकी जो उत्सुकता होती है, वह भी इतनी ही शुद्ध होती है। हमारा यह कहना नहीं है कि उसकी वह उत्सुकता सभी स्थानोंमें और पूर्ण रूपमे अशुद्ध ही रहती है। पर इसमें कोई संदेह नहीं कि स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुषोंकी यह उत्सुकता अधिक स्थानों और अधिक परिमाणमें अशुद्ध ही होती है। पुरुषोंके प्रेम और दृष्टिमें यह दोष अधिक परिणाममें देखनेमें आता है।

वैवाहिक आयुष्य-क्रमको स्वर्गीय बनाना अथवा शैतानी बनाना स्त्री और पुरुष दोनोंपर ही अवलम्बित रहता है। परन्तु पुरुषोंपर इसका विशेष उत्तर-दायित्व रहता है; और इस उत्तरदायित्वका बहुत बड़ा अंश इसी वासनाकी शुद्धिपर अवलम्बित रहता है।

प्रत्येक विवाहित और विवाह करनेकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको यह बात सदा बहुत अच्छी तरह अपने ध्यानमें रखनी चाहिए।

स्वयंनिर्णय या कोर्टिंग

सम्प्राप्ते षोडशे वर्षे गर्दभी चाप्सरायते।

१२. स्त्री और पुरुष जब पूर्ण युवावस्थामें आते हैं, तब उनके शरीरके अन्दरका वीर्य बहुत अधिक चचल हो उठता है। इसी कारण उनमें एक प्रकारका आकर्षण भी बढ़ जाता है। कहते हैं कि जब सोलहवाँ वर्ष लगता है, तब गधी भी अप्सराके समान दिखाई पड़ने लगती है! इस सुभाषि-तमें ऊपर बतलाये हुए आकर्षणका शारीरिक स्वरूप बहुत ही मार्मिकतासे दिखलाया गया है। यह शारीरिक आकर्षण बहुत प्रबल होता है। इसी

आकर्षणके कारण, चाहे स्वयं-निर्णयके सिद्धान्तपर और चाहे वृद्ध-निर्णयके सिद्धान्तपर, प्रत्येक युवकको एक युवती मिलती है; और उन्हें एक दूसरेका रूप भला भी जान पड़ता है। यह प्रवृत्ति सभी जगह देखनेमें आती है और इसे देखते हुए यही कहना पड़ता है कि संसारमें कोई व्यक्ति कुरूप नहीं होता।

आजकल विवाहके सम्बन्धमें जो कोर्टिंग या स्वयं-निर्णयकी प्रणाली प्रचलित है, उसे हमारे यहाँ प्राचीन कालमें ब्राह्म(?)विवाह कहते थे। जिन लोगोंने यह प्रणाली चलाई थी, उन लोगोंका उद्देश्य यह था कि स्वयं-निर्णयकी प्रणालीके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपनी पसन्दकी युवतीके साथ अपनी शारीरिक और मानसिक एकरसता उत्पन्न कर लेगा। इस प्रकार अपने लिए ऐसी संगिनी ढूँढ़ ली जाती थी जो जन्मभर साथ देती थी। इसी लिए वे लोग ऐसा समझते थे कि युवक और युवती दोनोंको कुछ दिन एक साथ रहकर बिताना आवश्यक है।

परन्तु पुरुषोंकी दृष्टिमें जो अशुद्ध या अपवित्र अंश रहता है, उसके कारण इस विचार-प्रणालीका आधार बहुत कुछ डगमगा गया है। कदाचित् कोई जोर देकर यह नहीं कह सकता कि जिन समाजोंमें युवकों और युवतियोंके विवाहका निर्णय उनके घरके बड़े बूढ़े लोग करते हैं, उन समाजोंमें सुखपर्यवसायी विवाहोंकी जितनी संख्या होती है, उनकी अपेक्षा उन समाजोंमें सुखपर्यवसायी विवाहोंकी संख्या कहीं अधिक होती है जिनमें स्वयं-निर्णयकी प्रणाली प्रचलित होती है। इसके विपरीत वे लोग स्वयं ही अपने मनमें यह समझते होंगे कि स्वयं-निर्णयकी प्रणाली प्रचलित होनेके कारण समाजमें वैवाहिक और कौटुम्बिक सुखका अभाव ही अधिक देखनेमें आता है।

---

* हृदयोंमें अनुराग परस्पर, होता है औ रहता मेल।
शास्त्र बिचारे क्या जानें, यह हृदयोंका है कैसा खेल॥
भारी पंडित हो, कुलीन हो, रखता हो अति उच्च विवेक।
महा पुरुष समझा जाता हो, सद्गुण उसमें रहें अनेक॥
फिर भी काम-वासनाको, वश करनेमें यदि हो न समर्थ।
तो उसके ये सारे सद्गुण, हो जाते हैं बिलकुल व्यर्थ॥

इसका वास्तविक कारण यह है कि पुरुषोंमें जो दूषित मनोवृत्ति होती है, उसके कारण स्त्री-पुरुष साथ रहनेके समय आपसके सूक्ष्म रासायनिक साधर्म्य और वैधर्म्य नहीं समझ सकते। उनकी मानसिक ग्रहण-शक्ति इतनी तीव्र रह ही नहीं जाती। साथ ही उनका चुनाव मुख्यतः शारीरिक अनुकूलतापर ही होता है। वह चुनाव प्रधानतः वैषयिक आकर्षण और शारीरिक गुणानुकूलता-पर ही अवलम्बित रहता है।

३३. युवक और युवतीका जो विवाह उनके माता-पिता, अभिभावक या वृद्ध लोग करते हैं, उसे वृद्ध-निर्णय कहते हैं। जो लोग वृद्ध-निर्णयके सिद्धान्तके समर्थक थे, उनकी दृष्टिमें स्वयं-निर्णयवाले सिद्धान्तका यह बहुत बड़ा दोष आ गया था। उन्होंने सोचा कि जब वास्तविक सूक्ष्म गुणानुकूलता ढूँढ़ निकालना असम्भव ही है, तब फिर यह स्वयं-निर्णयका हास्यास्पद अभिनय ही क्यों किया जाय? इस प्रणालीसे सूक्ष्म गुणानुकूलताका पता लगाना तो प्रायः असम्भव ही होता है, पर साथ ही इसके विपरीत समाजमें वे दोष बहुत बढ़ जाते हैं, जो साधारणतः युवकों और युवतियोंके एक साथ रहनेसे उत्पन्न होते हैं। यही इस सम्बन्धकी विचार-परम्परा है।

अब यह तो एक प्रकारसे निश्चित ही हो गया कि गुणानुकूलता ढूँढ़ निकालना सम्भव नहीं है। इसलिए यह प्रश्न किया जाता है कि स्थूल शारीरिक गुणानुकूलता देखकर जो थोड़ीसी एकरसता सम्पादित की जा सकती है, वही क्यों न सम्पादित कर ली जाय? परन्तु इस प्रश्नका उत्तर बहुत ही सहज है। युवावस्थाके आरम्भमें जो वैषयिक आकर्षण होता है, वह इतना विलक्षण और विकट होता है कि उसके आधारपर साधारणतः किसी युवक और युवतीमें साधारण एकरसता उत्पन्न होनेमें कुछ बहुत अधिक विलम्ब नहीं लगता। मानवी स्वभावमें अपने अनुकूल जोड़ा ढूँढ़नेकी प्रवृत्ति इतनी बड़ी है कि मनुष्य चाहे किसी परिस्थितिमें क्यों न रहे, वह अपने लिए जोड़ ढूँढ़े विना नहीं रह सकता। इस मेल मिलानेकी प्रवृत्तिको हम अनुकूलप्रवणता कह सकते हैं। अब सभी स्थानोंमें यह बात देखनेमें आती है कि जब इस अनुकूलप्रवणताको प्रबल आकर्षकताका सहारा मिलता है, तब शारीरिक गुणानुकूलताका साधना कुछ भी कठिन नहीं होता।

इस प्रकार स्वय-निर्णयमे सूक्ष्म गुणानुकूलताका साधन प्रायः असम्भव होता है, और वृद्ध-निर्णयमें स्त्रीके सम्बन्धमें कुछ वहुत अधिक विचार ही नहीं किया जाता । पर यह वात नहीं है कि वृद्ध-निर्णयमें इस वातकी विलकुल उपेक्षा ही की जाती हो । हिन्दुओंमें अन्य दृश्य साधनोंके अभावमें इस कामके लिए ग्रह गण, नाडी और योनि आदिका विचार किया जाता है । परन्तु फिर भी यह वात देखनेमें नहीं आती कि जिन समाजोंमें वृद्ध-निर्णयकी प्रथा प्रचलित है, उनमें इसके कारण सूक्ष्मानुकूलता विशेप उपयुक्त ही ठहरती हो।

इस प्रकार सूक्ष्म गुणानुकूलता ढूँढ़ निकालनेके लिए ये दोनों ही मार्ग निरुपयोगी सिद्ध होते हैं, और साधारणत. स्थूल गुणानुकूलताका ही इन दोनों मार्गोंसे साधन होता है। इसलिए परिणाममें जो लाभ होता है अथवा होना चाहिए, उसे देखते हुए यही कहना पड़ता है कि दोनोंमें किसी पक्षमें इतनी अधिक उत्तमता या विशेपता नहीं है, जिसके कारण कोई एक पक्ष दूसरे पक्षको हास्यास्पद ठहरा सके ।

३४. स्त्रियों और पुरुषोमें विवाहके योग्य अथवा विवाहकी इच्छा रखनेवाले युवको और युवतियोंमें सूक्ष्म गुणानुकूलता ढूँढ़ निकालना इस प्रकार बहुत कुछ कठिन वल्कि प्रायः असम्भव ही सिद्ध होता ह । परन्तु यह गुणानुकूलता ढूढ़ निकालना नितान्त असम्भव नहीं है । युवती और युवक दोनों ही एक साथ रहनेपर आपसमें यह वात समझ लेते हैं कि हम लोगोंमें यथेष्ट अनुकूलता है या प्रतिकूलता । इसके प्रमाण दोनोंको ही मिल जाते हैं । इस तात्त्विक शक्यतापर ही कोर्टिंगकी पद्धतिका तात्विक समर्थन किया जा सकता है । तव व्यवहारमें जो यह मार्ग निरुपयोगी ठहरता है, उसका क्या कारण है ?

आपसकी सूक्ष्म गुणानुकूलता समझनेके लिए जो दो व्यक्ति सहवासमें रहते हों, अर्थात् कोर्टिंग करते हों, उनका परलिंग-प्रेम अत्यन्त शुद्ध होना चाहिए। उसमें स्थूल वासनापूर्तिका अंश विलकुल नहीं होना चाहिए। केवल इसी अवस्थामें सूक्ष्म अनुकूलता या प्रतिकूलताका अनुमान किया जा सकता है और प्रमाण मिल सकता है। इस प्रकार सहवासमें आये हुए व्यक्तियोंमें उनके गुणोंके अनुसार शुद्ध प्रेम, काम-वासना, मानसिक स्फूर्त्ति

अथवा जड़ता आदि भिन्न भिन्न मनोविकारोंकी छटा उत्तेजित होगी, और उसीसे वे लोग आपसकी सूक्ष्म गुणानुकूलताका अनुमान कर सकेंगे और प्रमाण पा सकेंगे।

इसी सूक्ष्म संवेदना-शक्तिके कारण पवित्र वृत्तिकी स्त्रियाँ पराए पुरुषोंके चाल-चलनसे बहुत जल्दी इस बातकी परीक्षा कर सकती हैं कि स्त्रीके सम्बन्धमें उसके विचार या नियत कैसी है। इसी सूक्ष्म संवेदना-शक्तिके कारण नीच पुरुषोंके बहुत कुछ सौम्य अथवा उग्र षड्यन्त्रोंसे पवित्र स्त्रियाँ अपना बहुत कुछ बचावकर लेती हैं। और इसी सूक्ष्म सवेदना शक्तिके कारण अपवित्र पुरुष पवित्र स्त्रियोंको अधिक कष्ट देनेका साहस नहीं कर सकते और न उसमें सफल हो सकते हैं। पवित्र शीलके कारण जो यह सूक्ष्म संवेदना-शक्ति प्राप्त होती है, उसके बिना स्त्रियों और पुरुषोंकी सूक्ष्म गुणानुकूलता निश्चित ही नहीं की जा सकती।

वीर्य-संजीवनीसे सभी स्त्रियों और पुरुषोंमें यह शक्ति अवश्य ही आ जाती है। इसी वीर्य-संजीवनीसे शुद्ध वासना उत्पन्न होती है, जिसके कारण युवक और युवतीके क्षणिक अथवा दीर्घ-कालीन सहवासमें स्थूल काम-वासनाका प्रवेश नहीं होने पाता। उनके सामने केवल बाह्य स्वरूपका प्रश्न नहीं उपस्थित होता और उनमें उसी दशामें परस्पर आकर्षक मनोवृत्ति उत्पन्न होती है, जब उनमें केवल सूक्ष्म मानसिक गुणानुकूलता होती है। और यदि उनमें पहलेसे ही सम्बन्ध स्थापित हो गया हो, तो उनकी स्थूल वासना कम होती जाती है और शुद्ध आकर्षण बढ़ता जाता है।

जोड़ मिलानेके दो मार्ग

२५. यदि सूक्ष्म गुणानुकूलताका निर्णय किये बिना ही विवाह हो, तो फिर वैवाहिक जीवन-क्रम किस प्रकार सुखपूर्ण हो सकता है? इस प्रकारका प्रश्न सहजमें ही उत्पन्न हो सकता है। जो नवयुवक विवाहके लिए उत्सुक होते हैं और जिनके मनमें प्रायः रम्य कल्पनाएँ उठा करती हैं, उनके मनमें तो यह प्रश्न और भी विशेषतासे उत्पन्न होता है। यह कठिनता दूर करनेके दो मार्ग हैं। और वे दोनों मार्ग एक दूसरेसे नितान्त भिन्न नहीं हैं, बल्कि कुछ अंशोंमें एक दूसरेके पोषक हैं। वे दोनों मार्ग इस प्रकार हैं—

(१) वासनाकी शुद्धि; और

(२) अनुकूलता।

अब हम इन दोनों मार्गोंपर संक्षेपमें अपने कुछ विचार प्रकट करते हैं।

(१) स्त्रीके प्रेमसे शारीरिक वासनाको तृप्त करनेकी जो भावना होती है, उसे जहाँ तक हो सके, अपने मनसे निकालकर नष्ट कर देना चाहिए; और उसके स्थानपर पवित्र आत्मिक एकता, परस्पर पोपकता और सहवासजन्य सुखानुभूतिके अनुरागको प्रधानता देनी चाहिए।

चाहे विवाह हुआ हो और चाहे न हुआ हो, ऊपर बतलाये हुए मार्गसे आत्म-सुधार करना प्रत्येक मनुष्यका कर्त्तव्य है। जो वैवाहिक जीवन सुखहीन होता है, वह भी इस उपायसे बहुत कुछ सुखपूर्ण हो सकता है और भावी वैवाहिक जीवनके सुखहीन होनेकी सम्भावना बहुत कुछ कम हो जाती है।

(२) दूसरा मार्ग अनुकूलप्रवणता या पात्रके उपयुक्त बननेकी प्रवृत्ति है। मनुष्यमें यह गुण मानों बीजभूत ही होता है, और ज्यों ज्यों बढ़ाया जाय त्यों त्यों बढ़ता ही जाता है। इसलिए विवाह चाहे स्वयं-निर्णयके सिद्धान्तके अनुसार हो और चाहे वृद्ध-निर्णयके सिद्धान्तके अनुसार हो, स्त्री और पुरुषमें एक दूसरेके अनुकूल बननेकी और मिलनेकी जो मानसिक प्रवृत्ति है, उसकी वृद्धि अवश्य करनी चाहिए।

पाश्चात्य विचार-पद्धति कुछ ऐसी है कि उसमें मेल मिला लेनेके बदले अधिक प्रयत्न इसी बातका किया जाता है कि जहाँ ठीक मेल मिले, वहीं संलग्नता की जाय। यदि केवल स्त्री और पुरुषके सम्बन्धका ही ध्यान रक्खा जाय, तो कहना पड़ेगा कि यह प्रवृत्ति बहुत कुछ अनर्थकारक भी है। इसका कारण यह है कि स्त्री और पुरुषका सम्बन्ध और नातोंसे जितने सम्बन्ध होते हैं, उन सब सम्बन्धोंकी अपेक्षा कई गुना अधिक व्यापक और उत्कट होता है। इसलिए स्वभावत: ही जो मिल जाय, केवल वहीं तक जोड़ मिलानेकी इस प्रवृत्तिका सबसे बड़ा परिणाम यह देखनेमें आता है कि पाश्चात्य समाजमें गृह-संस्था तो गौण होकर पीछे रही जा रही है और उसका स्थान क्लब-... ले रही है।

३६. संसारमें कहीं कोई ऐसा जोड़ा देखनेमें नहीं आता जिसका मेल सब प्रकारसे समाधानकारक और सन्तोषजनक हो। संसारमें नित्य ही लोगोंको अपना मेल मिला लेना पड़ता है। परन्तु यह कहीं देखनेमें नहीं आता कि सहजमें दोनोंका मेल मिल ही जाता हो। यदि प्रत्येक मनुष्य यह कहे कि मैं ऐसा हूँ और बराबर ऐसा ही रहूँगा, तो संसारमें एक भी प्राणी ऐसा नहीं मिल सकता जिसके साथ उसका मेल बैठ सकता हो। फिर धर्म, अर्थ और काम सभीकी दृष्टिसे जिन लोगोंको जन्मभर अत्यन्त निकट रहकर बिताना हो, उन दोनोंके स्वभावके सम्बन्धमें यह समझना भ्रमपूर्ण ही है कि वह सब बातोंमें पूर्ण रूपसे एक दूसरेके साथ मिलेंगे ही। तब इस कल्पनाके आधारपर जो विवाह-पद्धति खड़ी की गई है, उस विवाह-पद्धतिके तथा उस वृत्तिसे चलाये हुए वैवाहिक जीवन-क्रमके सुखपूर्ण होनेकी बहुत ही थोड़ी सम्भावना है। यदि स्त्री और पुरुष दोनों ही यह कहने लगें कि हम केवल अपने विचारके अनुसार सब कार्य करेंगे, जैसे मौजमें आवेगा, वैसे रहेंगे और हमारे विचारों तथा कार्योंमें कहीं कोई विघ्न बाधा न डाले, तो उस दशामें उन दोनोके लिए दो भिन्न मार्गोंपर स्वतन्त्रतापूर्वक चलनेके सिवा और कोई उपाय ही न रह जायगा।

जिन समाजोंमें वृद्ध-निर्णयकी प्रथा प्रचलित है, उनमें शारीरिक और सूक्ष्म गुणानुकूलताके होने पर भी ज्यादा जोर इस मेल मिला लेनेकी—प्रयत्न करके एक दूसरेके अनुकूल हो लेनेकी—बातपर ही दिया जाता है। ऐसे समाजमें जब स्त्री और पुरुष विवाहसम्बन्धमें आबद्ध होते हैं, तब वे यही मानकर अपने गार्हस्थ्य जीवनका आरम्भ करते हैं कि चाहे हम दोनोंमें आपसमें मेल बैठे और चाहे न बैठे, हम लोगोंको आजन्म एकत्र रहना ही पड़ेगा। और इसी कल्पनाके कारण उनकी प्रवृत्ति मेल मिला लेनेकी ओर होती है।

अपने आप मिल जानेवाले मनुष्य-स्वभावका अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तियोंके समाजको सदा निराश ही होना पड़ता है; और जिन समाजोंमें किसी प्रकार मेल बठा लेनेकी प्रवृत्ति होती है, उनको और चाहे जो हो, जैसे तैसे अपना समाधान कर लेने और सन्तुष्ट होनेका सहारा रहता है। इसमें दोष केवल इतना ही है कि इस दूसरी प्रणालीमें मेल कर लेनेके लिए पुरुषकी अपेक्षा स्त्रीको ही आवश्यकतासे अधिक झुकना पड़ता है।

हम इन दोनों प्रणालियोंमेंसे किसी प्रणालीको अधिक श्रेष्ठ नहीं कहते। हमें केवल यही कहना है कि स्त्री और पुरुषमें मेल तभी बैठेगा, जब पहले मेल करनेका प्रयत्न किया जायगा।

स्त्री-पुरुषके सहवासका पहला प्रसङ्ग

२७. लोग नये वर और वधूकी प्रायः यह कहकर प्रशंसा किया करते हैं कि—"कैसा सुन्दर जोड़ा मिला है!" वर यह समझकर बहुत प्रसन्न होता है कि मुझे स्त्री बहुत अच्छी और मनके मुताबिक मिली है। वधू भी चाहे सुशिक्षित हो और चाहे अशिक्षित, इसी प्रकारके सुखपूर्ण विचारमें रहती है कि मुझे वर बहुत ही अच्छा और मेरी पसन्दका मिला है। परन्तु ये सब विचार मुख्यतः स्थूल ही होते हैं। अन्दरकी बात राम जाने।

वधू और वरके सूक्ष्म गुण चाहे मिलते हों और चाहे न मिलते हों और अपना मेल मिला लेनेकी ओर उनकी प्रवृत्ति हो और चाहे न हो, परन्तु इतना अवश्य है कि यदि वधू कुछ शिक्षिता भी हुई, तो भी प्रायः असंस्कृत ही होगी; और वर यदि सुशिक्षित और सुसंस्कृत भी हुआ, तो भी वह सामान्यतः उसी आकर्षणके कारण वधूपर लुब्ध रहेगा जो प्रायः युवावस्थामें हुआ करता है। यह अवस्था साधारणतः सभी जगह देखनेमें आती है। ऐसी अवस्थामें चाहे केवल शारीरिक गुणानुकूलताके ही कारण क्यों न हो, विवाहित युवक और युवतीका आरम्भमें जो सहवास होता है, उसके कारण तथा वीर्यगुण-विनिमयके कारण उन दोनोंमें एक नवीन जीवनका संचार हो जाता है। उस समय शरीरमें जो वीर्य-ओज सगृहीत होता है, वह समस्त शरीरमें भीना रहता है और शरीरमें संचरित होनेवाले रक्तमें पूर्णरूपसे भरा हुआ रहता है। इसी लिए शरीरमेंकी सारी छीज बाहर निकल जाती है और उसके स्थानपर शरीरमें नवीन चैतन्य भरता रहता है। मज्जाकन्दको पुनरुज्जीवक चेतना प्राप्त होती है, जिससे मनोवृत्तियोंमें बहुत कुछ जोश आने लगता है। इस प्रकार जिन लोगोंको शारीरिक और मानसिक नवीन जीवन प्राप्त होता है, उन लोगोंके शरीरमें एक ऐसा आकर्षण उत्पन्न होता है, जो उनके सहवासमें आनेवाले प्रत्येक मनुष्यको वशमें कर लेता है।

विवाहके उपरान्त बिलकुल आरम्भमें वधू और वरमें जो यह नवीन पुनरुज्जीवक शक्ति दिखलाई पड़ती है, वही स्त्री और पुरुषकी शक्तिके वीर्य-गुण-विनिमयका शुद्ध और सच्चा स्वरूप है।

वीर्य-संजीवनीके द्वारा यह तात्कालिक स्वरूप चिरकालीन हो सकता है।

सच्चा वीर्य-विनिमय

३८. परन्तु वास्तवमें यह नवीन जीवन कभी वीर्य-विनिमयके कारण प्राप्त नहीं होता। वह वीर्य-संग्रहके कारण प्राप्त होता है। वीर्य-संग्रह और परस्पर-पूरक तथा परस्पर-पोषक दो व्यक्तियोंके सहवाससे इस नव-जीवनका निर्माण होता है। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, स्त्री और पुरुषका सहवास स्थूल वीर्य-विनिमयके लिए नहीं हुआ करता। दोनोंमें परलिंगके प्रति जो आसक्ति होती है, वह मूलतः इस स्थूल वीर्य-विनिमयके लिए नहीं होती।

यदि भौतिक विज्ञानकी भाषामें कहा जाय, तो स्त्री और पुरुष दोनों भिन्न गुणवाले रासायनिक द्रव्य हैं, और यदि आध्यात्मिक भाषामें कहा जाय तो स्त्री और पुरुष दोनों दो भिन्न भिन्न वृत्तियोंके दृश्य चिह्न हैं। इन दोनोंका संगम होनेपर दोनोंमें एक ऐसी रासायनिक प्रक्रिया आरम्भ होती है, जो परस्पर पूरक और पोषक होती है और इसी कारण दोनोंमेंसे प्रत्येकको ऐसा जान पड़ता है कि हमें नवजीवन प्राप्त हो गया है। स्त्रीके रज और पुरुषके वीर्यमें ये भिन्न भिन्न रासायनिक और आध्यात्मिक गुण-धर्म संगृहीत रहते हैं। परन्तु यह वीर्य केवल वही वीर्य नहीं है, जो स्त्री और पुरुषके सम्भोगके समय स्थूल रूपमें शरीरसे बाहर निकलता है। आध्यात्मिक स्वरूपवाला जो वीर्य होता है, वह इस स्थूल वीर्यके साथ साथ सारे शरीरमें फैलता रहता है और सारे शरीरमें व्यक्त होता रहता है। स्थूल शरीरसे जो वीर्य बाहर निकलता है, उसका स्वरूप बिल्कुल स्थूल होता है। वह केवल अनुकूल परिस्थितिमें ही प्रजोत्पादन कर सकता है। जो वीर्य एक बार शरीरसे बाहर निकल आता है, उसमें आध्यात्मिक गुण भला कहाँ रह सकता है! जब तक वीर्य शरीरके अन्दर रहता है, तभी तक और जब तक वह सारे शरीरमें फैला रहता है, तभी तक उसका यह गुण उसी

प्रकार शरीरके बाहर अपना प्रकाश फेंकता रहता है, जिस प्रकार वायु-रहित काँचके गोलेमेंके बिजलीके तार अपना प्रकाश बाहर फेंकते रहते हैं।*

वास्तविक वीर्य-विनिमय वह स्त्री-सम्भोग नहीं है, जिससे वीर्यकी हानि होती है। ऊपर जो विवेचन किया गया है, उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वास्तविक वीर्य-विनिमय उसी स्त्री-सहवासमें होता है जिसमें सम्भोग नहीं किया जाता।

३९. जो नवयुवक इस नव-जीवनका रहस्य बिलकुल नहीं समझते और केवल अपने शरीरमें यह नव-जीवन देखकर ही फूल जाते और आपेसे बाहर हो जाते हैं, वे वास्तवमें दयाके ही पात्र हैं। परन्तु दया किस-किसपर की जाय और कहाँ तक की जाय? प्रायः सभी नवयुवक मानों एक ही मालाके मनके होते हैं। बहुतसे नवयुवकोंकी समझमें कभी यह बात आती ही नहीं कि स्थूल वीर्य-विनिमय और आध्यात्मिक वीर्य-विनिमयमें क्या अन्तर है। वे केवल स्थूल वीर्य-विनिमय करना जानते हैं, उसी स्थूल वीर्य-विनिमयमें वे भूल जाते हैं और उसी स्थूल वीर्य-विनिमयके पीछे पड़ जाते हैं।

उन्हें आध्यात्मिक वीर्य-विनिमयकी कल्पना ही नहीं होती। साथ ही यह बात भी है कि साधारण नवयुवकोंको इस स्थूल और आध्यात्मिक वीर्य-विनिमयका अन्तर बतलानेका भी कोई विशेष प्रयत्न अबतक नहीं किया गया है।

आध्यात्मिक वीर्य-विनिमयके लिए शुद्ध परलिंगासक्तिकी ही कामना होती है और स्थूल वीर्य-विनिमयके लिए स्थूल ग्राम्य अथवा वैषयिक प्रेमकी आवश्यकता होती है। शुद्ध प्रेम और अशुद्ध प्रेम, पवित्र आसक्ति और पापपूर्ण आसक्ति, दैवी पातिव्रत और दानवी स्त्रैणताकी वास्तविक परीक्षा इसी स्थूल और आध्यात्मिक वीर्य-विनिमयकी आसक्तिसे की जा सकती है।

---

* प्रकृतिने हमें जो गुह्य शक्ति प्रदान की है, उसे दबाकर अपने शरीरके अन्दर ही उसका संग्रह करना चाहिए और उसका उपयोग अपने आरोग्यकी वृद्धिमें करना चाहिए। यह आरोग्य केवल शरीरका ही नहीं होता, बल्कि मन, बुद्धि और स्मरणशक्तिका भी होता है।

—महात्मा गाँधी।

यह बात नहीं है कि स्थूल वीर्य-विनिमयके साथ इस आध्यात्मिक वीर्य-विनिमयकी बिलकुल कोई भावना नहीं होती । इसका कारण यही है कि उसी भावनाके अधिष्ठानपर अन्य-लिंगासक्तिकी स्थापना हुई है । परन्तु प्रश्न केवल यही रह जाता है कि आगे चलकर उसका जो विकास होता है, उसमें कौनसा तत्त्व प्रधान रहता है । और इसी प्रश्नपर वैवाहिक जीवन-क्रमका पर्यवसान अवलम्बित रहता है ।

हमारे यहाँ हिन्दुओंमें प्रत्येक तरुण जिस समय किसी तरुणीका पाणिग्रहण करता है, उस समय उसे यह अभिवचन देता है कि—" धर्मे च अर्थे च कामे च नातिचरामि । " इसका अभिप्राय यही है कि धर्म, अर्थ और काम सभी प्रकारके व्यवहारोंमें दोनोंको एक दूसरेका पोषक बनकर रहना चाहिए । परन्तु पुरुषकी संस्कृति इतनी उच्च नहीं होती कि वह वीर्य-विनिमयका इतना सूक्ष्म स्वरूप ग्रहण कर सके और वह केवल काम-विकारको ही पूरी पूरी प्रधानता देता है ।

संसार या जीवनसे विरक्ति

४०. जब किसी नवयुवकको पहले पहल नई स्त्री मिलती है, तब वह सोचता कि मैं इस स्त्रीका क्या करूँ और क्या न करूँ। वह मनमाने ढँगसे उसका उपभोग करने लगता ह । वह शारीरिक वीर्य-विनिमयमें किसी प्रकारकी मर्यादा नहीं रखता। उसकी दृष्टि केवल स्त्रीके साथ सम्भोग करनेकी कल्पनापर ही लगी रहती है। आरम्भिक अवस्थामें जो यह वीर्य-विनाश होता है, उसका परिणाम प्रत्येक व्यक्तिके विकारकी तीव्रता और प्रकृतिपर अवलम्बित रहता है । तो भी यह बात बिलकुल ठीक है कि प्रायः सभी युवक इस परिस्थितिके वशवर्ती होकर प्रायः नित्य एक बार ऐसे भयंकर परिमाणमें वीर्यनाश करते हैं, जो उनकी शक्तिके बिलकुल बाहर होता है ।

जिस धन और ऋण विद्युत्को वायुरहित काँचके गोलेमें एकत्र होकर सुप्रकाशित होना चाहिए, वह इसके बदलेमें विषयासक्तिके अन्धड़में पड़कर आध्यात्मिक एकरसताके संरक्षक काँचके गोलेको छिन्न भिन्न कर देती है; और धन तथा ऋण दोनों विद्युत्-प्रवाह निष्क्रिय और निर्वीर्य हो जाते हैं ।

जिस जोड़ेकी शोभा पहले लक्ष्मी और नारायणके समान रहती थी, अब उसकी वह शोभा धीरे धीरे नष्ट होने लगती है । युवककी तेजस्विता और

युवतीकी मोहकता, युवककी तेजी और युवतीकी चंचलता, युवकका कर्तृत्व और युवतीकी कार्यतत्परता, युवकका शारीरिक बल और युवतीकी शक्ति धीरे धीरे नष्ट होने लगती है।

अब उन दोनोंपर शारीरिक रोग और मानसिक भोगकी छटा पड़ने लगती है। उनमें अनेक प्रकारके रोग, मानसिक क्लेश, छटपटाहट, कानाफूसी, किटकिट उत्पन्न होने लगती है और उनका परिमाण बढ़ने लगता है। अब दोनों ही इस जीवन और संसारसे विरक्त होने लगते हैं और जीवन उन्हें भार सा जान पड़ने लगता है।

स्त्रीके जीवनपर संकट

४१. जिस प्रकार शेरके पंजेमें बकरी पड़ जाती है, उसी प्रकार बहुत सी लड़कियाँ विवाह अथवा गर्भाधान होते ही अपने पतिके हाथमें पड़ जाती हैं और उनकी दुर्दशा होती है।

पहले तो बहुत ही छोटी अवस्थामें लोग लड़कियोंका विवाह कर दिया करते थे, पर अब कुछ जातियोंमें उनके रजस्वला होनेके कुछ पूर्व किसी प्रकार उनका विवाह करके लोग उनसे पीछा छुड़ानेका प्रयत्न करते हैं। ऐसी अवस्थाओंमें विवाहके कुछ ही दिनों बाद शास्त्रोक्त अथवा नाम मात्रके गर्भाधानका प्रश्न उत्पन्न होता है। जिन लड़कियोंका पालन-पोषण और विवाह आदि बिलकुल आँखें बन्द करके किया जाता है, उनके विवाह और गर्भाधान विधिके बीचमें तो प्रायः एक महीनेसे भी कमका अन्तर पड़ता है। साधारण बातोंमें इन दोनों ही प्रकारकी लड़कियोंकी हालत बहुत ही नाजुक होती है। उनका चटपट पतिके साथ परिचय करा दिया जाता है, उनकी सोहाग-रात हो जाती है और बहुतसे अवसरोंपर इसका कोई प्रबल कारण ही नहीं होता। केवल यही नहीं, लड़कीके ऋतुमती होनेसे पहले ही उसकी सोहाग-रात करा दी जाती है। परन्तु इस प्रकारकी अधिकाश अवस्थाओंमें लड़कीकी स्थिति उस आदमीके समान हो जाती है, जिसका अपने घरमें जान-पहचानके चोरसे सामना हो जाता है और जिसे इसी जान-पहचानके कारण वह चोर मार डालता है तात्पर्य यह कि लड़कीकी जानपर आ बनती है।

भारतीय समाजोंमें लड़कियोंका विवाह बहुत ही जल्दी, अर्थात् उनके ऋतुमती होनेसे पहले ही, और यदि बड़ी बात हुई तो १४–१५ वर्षोंकी

अवस्थाके भीतर, हो जाता है; और उसी अवस्थामें लड़कीको अपने पतिकी काम-वासना पूरी करनी पड़ती है। ऐसी अवस्थामें पति और पत्नीके सम्बन्धका यह पहला समय पत्नीके खयालसे वहुत ही धोखेका हुआ करता है। एक तो उसकी इन्द्रियोंकी शक्ति अल्प होती है और दूसरे उस समय तक उसकी वाढ़ भी पूरी नहीं होती। और उसी अवस्थामें उसे अपने ताजा दमवाले पतिकी प्रकृतिके अनुसार प्राय॰ नित्य ही उसकी काम-वासना पूरी करनी पड़ती है।*

इस अति प्रसंगके कारण वहुत सी लड़कियोंकी इन्द्रियोंपर वहुत अधिक जोर पड़ता है, जो वहुत ही भयंकर होता है और उनकी इन्द्रियमेंसे प्रायः रक्तस्राव भी होने लगता है। उसे इन्द्रिय-सम्वन्धी और भी अनेक प्रकारके विकार आ घेरते हैं, प्रदर आदि रोगोंके प्रादुर्भावकी सम्भावना भी वहुत शीघ्र उत्पन्न हो जाती है और उसके शरीरमें क्षय आदि रोगोंके वीज पैठ जाते हैं। लड़कीके जीवनके साथ ही साथ लड़केका जीवन भी पहली ही झोंकमें स्थायी रूपसे दुर्वल, रोगयुक्त और आस्थाशून्य हो जाता है।

भोजनान्ते स्मश्मानान्ते मैथुनान्ते च या मतिः।
सा मतिः सर्वदा चेत् स्यात्को न मुच्येत वन्धनात्॥
औषध मंत्र न करि सकै, काम-वासना दूर।
दान होम अरु व्रत सवै, जात व्यर्थ ज्यों धूर॥
रोग सवनसौं यह प्रवल, लगै न यापै मूर।
वौरायो-सो नर फिरै, रहै नेत्र मद्पूर॥

४२. अव प्रश्न यह होता है कि यह न्याय है अथवा अन्याय?

जो मनुष्य स्वयं अपनी हत्या करनेका प्रयत्न करता है, वह कानूनके अनुसार दोपी ठहरता है, और जो मनुष्य जान-वूझकर कोई ऐसा काम करता है जिससे दूसरेकी मृत्यु होती हो और दूसरेको वहुत अधिक शारीरिक कष्ट

* जिस समय पुरुष कामान्ध हो जाता है, उस समय उसे इस वातका विल्कुल कोई विचार नहीं रह जाता कि स्त्री कितनी अधिक अशक्त है और उसमे प्रजोत्पादनका भार उठाने तथा वालकोंका पालन पोषण करनेकी शक्ति कितनी कम है। —महात्मा गाँधी।

पहुँचता हो, वह कानूनके अनुसार दंडका भागी होता है। बहुतसे नवयुवक निष्प्रतिबन्ध रूपसे स्त्रीके साथ सम्भोग करते हैं, वे मानों अपने आपको आत्महत्याका अपराधी बनाते हैं। वे स्वयं अपनी हत्याके कारणीभूत होते हैं और जान-बूझकर अपने शरीरको बहुत बड़ा कष्ट देते हैं। केवल इतना ही नहीं, वे दूसरे व्यक्ति अर्थात् अपनी पत्नीकी आयुष्य कम करके धीरे धीरे उसकी हत्या ही करते हैं। वे जान-बूझकर अपनी स्त्रीकी अपमृत्युके कारण बनते हैं, उसके आरोग्यका नाश करते हैं और जान-बूझकर उसे बहुत अधिक शारीरिक कष्ट पहुँचाते हैं। परन्तु कानून ऐसे आदमियोंको दोषी या अपराधी नहीं ठहराता। यह न्याय है अथवा अन्याय ?

कानूनके मार्गमें बहुत सी अड़चनें हो सकती हैं; परन्तु समाज भी ऐसे मनुष्योंको खूनी समझना तो दूर रहा, अनीतिमान, दुष्ट और अज्ञ भी नहीं समझता। समाज इस विषयकी पूर्ण रूपसे उपेक्षा करता है। न तो व्यक्तियोंको ही इस बातका ज्ञान है और न समाजको ही यह पता है कि यह काम सब प्रकारसे आत्मघातक समाजघातक और धर्मविघातक है। तब यह न्याय है अथवा अन्याय ?

न तो तुम स्वयं अपनी हत्या करो और न दूसरेकी हत्या करो। स्वयं अपने जीवित रहनेके लिए दूसरेके प्राण मत लो और न दूसरेको जीवित रखनेके लिए स्वयं अपनी ही हत्या करो। परन्तु लोग स्वयं भी मरते हैं और दूसरोंको भी जीवित नहीं रहने देते। यह न्याय है अथवा अन्याय ?

उमंगोंका विनाश

४३. इस अतिप्रसंगके कारण पहले तो स्त्री और पुरुषकी ओजस्विताकी हानि होती है और तब उसके कारण एककी दूसरेपर रहनेवाली आसक्ति कम होती है। दोनोंके ही मनमें और विशेषतः स्त्रीके मनमें वह चाव और सहवासके लिए वह लीलायुक्त उत्सुकता नहीं रह जाती, जो पहले रहा करती थी। अब आपसके सहवासमें, आपसके शारीरिक स्पर्शमें और मानसिक सहविचार या विनोदमें और स्थूल वीर्य-विनिमयमें भी वह पहलेका सा आनन्द नहीं रह जाता। उनकी वह पहलेकी सी स्फूर्तिप्रद, उत्तेजक, सात्त्विक और उत्साहपूर्ण सुखानुभूति नहीं बच जाती; और उसके बदलेमें यदि बहुत हुआ तो स्थूल वीर्यविनमयकी विकट इच्छा और उग्र विकारवशता शेष रह जाती है।

जब स्त्री कुछ दिनों तक यह अतिरेक और अत्याचार सहन कर लेती है, तब धीरे धीरे पतिके प्रति उसका उत्साह कम होने लगता है। अब उसकी स्वयं यह इच्छा नहीं होती कि पतिके साथ हाव-भावपूर्वक अधिक आलिंगन करे। पहले वह पतिको अपना शारीरिक और मानसिक आधार समझा करती थी, और इसी कारण उसपर अपने शरीरका सारा भार डालकर स्वच्छन्दतापूर्वक हास्य-विनोद किया करती थी। पर अब धीरे धीरे उसकी यह प्रवृत्ति कम होने लगती है। अब इस लाड़ प्यार और निष्प्रतिवन्ध शारीरिक तथा मानसिक एकरसताके बदले ऐसे संगम और सहवासका आचरण होने लगता है, जो केवल औपचारिक और अधूरे मनसे होता है।

उमंग, काम-चेष्टा और मदन-विलास आदि जितनी कल्पनाएँ, भावनाएँ और वासनाएँ आदि हैं, उन सवका अनुभव उसी दशामें हो सकता है, जब प्रेमपूर्ण हाव-भाव और निष्प्रतिवन्ध मानसिक एकरसता हो। परन्तु वहुत अधिक वीर्य्य-विनिमय करनेसे इस प्रकारकी उमंगोका सवसे पहले सत्यानाश होता है। युवावस्थामें जिस मदन-विलासकी सदा कामना वनी रहती थी, अव वह नाममात्रको रह जाता है, और यदि समस्त जीवनका नहीं तो कमसे कम वैवाहिक जीवन-क्रमका पहला सुख सर्वदाके लिए नष्ट हो जाता है।*

रूपहानि वलहानि अरु, द्रव्यहानि कुलहानि।
जातिहानि हू होति है, निश्चय सरवस-हानि॥

—समर्थ रामदास।

४४. यदि यह अतिसंग आगे भी वरावर इसी तरह चलता रहा, तो स्त्री-पुरुपविपयक अन्य-लिंगासक्तिकी जगह उत्पन्न हुई इस अनास्थाका

* विवाहित स्त्रियों और पुरुषोंको विशेषत. नवविवाहित स्त्रियों और पुरुषोंको प्रति वर्ष कुछ दिनों तक, और यदि हो सके तो छ. महीनों तक एक दूसरेको छोड़कर विलकुल अलग और किसी अन्य स्थानमें जाकर व्यतीत करना चाहिए। अतिसग और अतिसहवासके कारण मनोवृत्तिपर तामसी कल्पनाओंका जो पुट चढ़ जाता है, वह इस प्रकार विरहाग्निमें जलकर राख हो जायगा। जो दृष्टि पहले एक दूसरेके दोष ही देखा करती थी, इस क्रियासे वह एक दूसरेके गुणोंका चिन्तन करने लगेगी; और आपसके व्यवहारमें जो चिड़चिड़ापन, अनास्था, उद्वेग तथा उद्वेगजनक प्रसंगोंका स्मरण आ जाता है, वह सब पूर्ण रूपसे नष्ट हो जायगा; और इसके उपरान्त जो पुनर्मीलन होगा, वह सुखप्रद तथा सुखपूर्ण होगा।

रूपान्तर विरागमें होने लगता है। एक दूसरेके सम्बन्धमें होनेवाला आकर्षण तो अबतक कभीका नष्ट हो चुका होता है। परन्तु अब उसके स्थानमें विराग उत्पन्न होने लगता है। दोनोंको एक दूसरेका बोलना चालना या हास्य विनोद करना, एक दूसरेको प्रसन्न तथा सन्तुष्ट करना अब बिल्कुल अच्छा नहीं लगता, और उसी मात्रामें एक दूसरेकी प्रसन्नता आदिके सम्बन्धमें अनास्था भी दिखाई पड़ने लगती है।

इस अनास्थाके कारण आगे चलकर दोनोंमें एक दूसरेके दोष ढूँढ़नेकी दृष्टि उत्पन्न होने लगती है; और तब वह दृष्टि भी धीरे धीरे बढ़ने लगती है। पहले तो उनके समस्त आचरण इस दृष्टिसे होते थे कि दूसरेके लिए जो काम हम करें अथवा जो विशिष्ट नीति हम ग्रहण करें, वह अच्छी होनी चाहिए; या कमसे कम ये सब बातें शुद्ध बुद्धिसे की जानी चाहिएँ। पर अब उनकी यह प्रवृत्ति दिनपर दिन कम होने लगती है। अब उनमें वह प्रवृति आरम्भ होने लगती है जिससे वे एक दूसरेके कामों, बातो और रुचियों आदिमें दोष ढूँढ़ने लगते हैं। उनकी क्षमाबुद्धि और उपेक्षा-बुद्धि कम होने लगती है। जब कोई अवसर आता है, तब दोनों एक दूसरेपर बुरे हेतुका आरोप करना चाहते हैं। उनका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, उन्हें बात-बातपर क्रोध आने लगता है, एक दूसरेको क्षमा करनेका भाव नहीं रह जाता और उग्रता आ जाती है। पहले वे एक दूसरेके अनुकूल होकर रहना चाहते थे, पर अब अपना अपना स्वत्व स्थापित करनेका प्रयत्न करते हैं; और अन्तमें समाजमें प्रचलित रूढि या प्रथाके अनुसार नौबत यहाँ तक पहुँचती है कि आपसमें खूब लड़ाई झगड़े होने लगते हैं।

चाहे कोई कुछ कहे, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि जो वैवाहिक जीवन-क्रम यशस्वी तथा सुखद नहीं होते, उनमेंसे सौमें नब्बे उदाहरणोंके दुःखपर्यवसायी होनेका मुख्य कारण यह अतिप्रसग और अनाचार ही हुआ करता है। इसके निमित्त-कारण चाहे कुछ भी हों और चाहे कुछ भी देखनेमें आवें, परन्तु मूल कारण बहुधा यही हुआ करता है।×

×सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥—मनु०

जिस कुलमें पत्नी और पति दोनों एक दूसरेसे सन्तुष्ट रहते हैं, उसी कुलका कल्याण होता है।

४५. हाथ-कंगनको आरसी क्या ? यदि पाठक यह निश्चय करना चाहें कि विवाहके सुखोंकी हमने ऊपर जो मीमांसा की है, वह ठीक है या गलत, तो उन्हें उचित है कि वे अपनी जान-पहचानके बहुतसे जोड़ोंके जीवन-क्रमका जरा सूक्ष्म दृष्टिसे निरीक्षण करें। उस समय बहुत सहजमें उनकी समझमें यह बात आ जायगी कि समाजमें इस अतिप्रसंगकी व्याप्ति कितनी अधिक है और उससे कितना अधिक अनर्थ होता है।

यह कैसा आश्चर्य और अनर्थ है ! युवतीके गालोंपर गुलाबीपनकी जगह फीकापन या पीलापन और नेत्रोंमें स्नेह-प्रभाकी जगह उनके नीचे काली रेखा दिखाई पड़ने लगती है। केवल इतना ही नहीं, उसका सुन्दर, आरोग्य और प्रभावशाली भावी जीवन तक अपनी समस्त उत्तमताएँ खोकर भीषण बन जाता है। उमंग, प्रेम और निर्विकल्प एकरसता आदि सभी बातें बहुत दूर चली जाती हैं; और उनके स्थानपर उद्विग्नता अनास्था तथा द्वेषका साम्राज्य हो जाता है।

यह कैसा आश्चर्य और कैसा अनर्थ है ! जिस नवयुवकके हृदयमें दुर्दमनीय उच्चाकांक्षा होनी चाहिए, उसमें उसके स्थानपर दुर्दमनीय तथा आत्मघातक विषय-वासनाका राज्य हो जाता है। जिन नेत्रोंको उज्ज्वल भविष्यकी ओर ले जानेवाला मार्ग ढूंढ़ना चाहिए, वे उसके बदलेमें स्त्रीके सौन्दर्यका कुत्सित निरीक्षण करते रहते हैं। स्त्री-दाक्षिण्य और मधुर पति-प्रेमकी जगह अबला स्त्रीका शारीरिक और आध्यात्मिक ह्रास देखनेमें आता है।

इस प्रकारका मनुष्य बहुत सहजमें पहँचाना जा सकता है। किसी दृश्य और प्रत्यक्ष रोगके न रहते हुए भी उसका शरीर धीरे धीरे घुलता जाता है। उसकी बुद्धि चाहे पहले कितनी ही तीव्र क्यों न रही हो, पर अब वह बराबर मन्द होती चली जाती है। अंगोंमें जोम रहते हुए भी धीरे धीरे जड़ता आने लगती है। उसके नेत्रोंके नीचेका भाग काला और कुछ सूजा हुआ सा जान पड़ने लगता है। सुशील स्त्रियोंके लिए उसकी दृष्टि त्रासदायक हो जाती है; और ठीक युवावस्थामें ही उसके शरीर तथा मनपर वृद्धावस्थाकी छाया पडने लगती है। उसकी आयु शीघ्र ही पूरी हो जाती है और वह बहुत कष्टसे मरता है।*

---

* विषय-वासनाका घर यौवन औ दुर्गतिका हेतु।
ज्ञानचंद्रका घन है कलुषित, मदन-सुहृद, दुख-सेतु॥

यह कैसा आश्चर्य और कैसा अनर्थ है !

४६. एक बात निर्विवाद रूपसे सिद्ध है कि केवल मनुष्य प्राणीको छोड़कर और किसी प्राणिवर्गमें वीर्यावयवका दुरुपयोग नहीं होता।

ज्यों ज्यों मनुष्यकी सभ्यता बढ़ती जाती है, त्यों त्यों उसके साथ उसके सब प्रकारके भोग-विलासकी कल्पना भी सभ्य बनकर बढ़ती जाती है और मनुष्य विषय-वासनाओंका दास बनता जाता है। लगातार अनेक पीढ़ियोंसे मनुष्यपर इस विषयासक्तिका संस्कार होता चला आ रहा है।

यह बात ठीक है कि मनुष्योंकी जंगली जातियों तकमें स्त्री-प्रसंगकी इच्छा बहुत प्रबल होती है। परन्तु फिर भी उन जातियोंके पुरुष इतनी अधिकतासे इस मोहके आगे बलि नहीं पड़ते। हाँ, इतना अवश्य है कि जब जब वे इस विकारके वशमें होते हैं, तब तब वे स्त्रियोंको अपनी इच्छाकी पूर्त्तिके लिए विवश करते हैं।

यदि पशुओंकी कोटिमें देखा जाय तो पता चलेगा कि उनमें मादा तब तक कभी प्रसंगके लिए अनुकूल या उद्यत नहीं होती, जब तक उसके गर्भ धारण करनेका अनुकूल समय नहीं आता। उलटे जब उसका नर प्रसंग करनेके लिए अधिक उत्सुक होता है, तब वह उसकी कामनाको बलपूर्वक रोकती है; और पशुओंमें नर भी मनुष्यकी भाँति दुर्दमनीय विकारके आगे बलि नहीं पड़ते। मादाके युक्तियुक्त विरोधके आगे उन्हें सदा दबना ही पड़ता है।

यदि स्त्री बहुत बीमार हो अथवा बिलकुल मिले ही नहीं, तब तो बात ही दूसरी है; और नहीं तो पुरुष यों कभी अपनी वासना तृप्त किये बिना नहीं मानता। और स्त्री भी, चाहे उसे कितना ही अधिक शारीरिक कष्ट क्यों न हो, सहसा पुरुषकी इच्छाका विरोध नहीं करती। पर इसमें सन्देह नहीं कि यह सब आनुवंशिक संस्कारका ही परिणाम है।

कुछ जंगली जातियोंमें अबतक यह प्रथा प्रचलित है कि जबतक स्त्रीके लिए गर्भ धारण करनेकी सम्भावनाका समय नहीं आता, तबतक पुरुष उसके साथ प्रसंग करनेके लिए उत्सुक नहीं होते। वे लोग बहुत सहजमें

भ्रांति आदि दोषोंका, इसको जानो बीज विचित्र।
अघका जनक लोकमें है यह, इसे न समझो मित्र ॥

यह बात समझ लेते हैं कि स्वयं हमारे शरीरको और साथ ही साथ स्त्रीके शरीरको भी कब और कितने समय तक प्रसंग न करके विश्राम लेनेकी आवश्यकता है; और वे उसीके अनुसार आचरण भी कर सकते हैं।

और दूर क्यों जायँ, इस काम-वासनाकी निवृत्तिके सम्बन्धमें उत्तर भारतकी बहुतसी जातियाँ प्रशंसनीय आत्म-संयम दिखलाती हैं। दक्षिणी और विशेषतः गुजराती पुरुषोंको एक सप्ताह तक व्रतस्थ रहना जितना कठिन जान पड़ता है, उन जातियोंके पुरुषोंको एक वर्षतक व्रतस्थ रहना उतना कठिन नहीं जान पड़ता।

४७. स्त्रीका मुख तक देखनेको निषिद्ध समझनेवाले कठोर ब्रह्मचर्यसे लेकर "मातृयोनिं परित्यज्य विहरेत् सर्वयोनिषु" तककी सभी बातोंमेंसे जिस बातका चाहे, मनुष्य अपनी बुद्धिमत्ताके बलपर पूरा पूरा समर्थन कर सकता है। इस संसारमें ऐसे अनेक पन्थ भी प्रचलित हैं जो ऐसे ऐसे तत्त्वोंका सक्रिय प्रतिपादन करते हैं, जिनका वर्णन सुनकर ही शरीरके रोएँ खड़े हो जाते हैं। ऐसी दशामें यदि कुछ लोग यह कहनेवाले दिखलाई पड़ें कि विवाह आदि कुछ बन्धनोंको मान्य करके स्त्री-प्रसंगकी इच्छा रोकनेका कोई अर्थ नहीं है अथवा यदि कुछ लोग यह कहते हुए दिखलाई पड़ें कि सप्ताहमें दो तीन बार स्त्री-प्रसंग कर लेना कुछ अनुचित नहीं है, बल्कि वह अपरिहार्य है, तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। परन्तु अनुभव सभी प्रकारकी शास्त्रीय आज्ञाओंसे कहीं बढ़कर श्रेष्ठ है। और बहुत प्राचीन कालसे यही अनुभव होता चला आया है कि आजतक जितने असाधारण और बहुत बड़े बड़े लोग हुए हैं, वे सभी पूर्ण ब्रह्मचारी, पवित्र-वीर्य या कमसे कम संजीवन व्रतका पालन करनेवाले अवश्य थे।

विषय-वासनाकी जितनी ही अधिक पूर्ति की जाती है, वह उतनी ही बढ़ती जाती है। ऐसी विषय-वासनाका दुष्परिणाम इतना सार्वत्रिक है कि जहाँ दृष्टि डाली जाय, वहीं ऐसे उदाहरण देखे जाते हैं जिनसे अच्छी शिक्षा ग्रहण की जा सकती है और बहुत कुछ अनुभव प्राप्त किया जा सकता है। रोमन कालमें जो बड़े बड़े पहलवान मनुष्योंसे ही नहीं बल्कि बड़े बड़े भीषण तथा हिंसक पशुओंतकसे युद्ध करते थे, उनसे लेकर आज कलके सभी पहलवानों और कुश्तीबाजों तक चाहे जिस बलवानको देखिए, शंकराचार्यसे लेकर

महात्मा गान्धीतक, और डार्विन तथा न्यूटन आदिसे लेकर थॉमस एडिसनतक चाहे जिस परम बुद्धिमान और बृहस्पतिको देखिए, सभीके चरित्र देखनेपर निर्विवाद रूपसे यही सिद्ध होता है कि आत्म-संयम करना अत्यन्त आवश्यक है। इसी प्रकार संसारमें सभी जगह यह भी देखनेमें आता है कि जब बड़ेसे बड़ा पहलवान और बलवान् भी एक बार स्त्रैण हो जाता है, तब वह बहुत ही थोड़े समयके अन्दर अपना काम या पेशा करनेके अयोग्य हो जाता है।

तर्क-वितर्क और वाद-विवादकी अपेक्षा अनुभवका माहात्म्य कहीं अधिक है। विषयी मनुष्योंमें एक भी ऐसा आदमी नहीं दिखलाया जा सकता, जो स्त्रैण होनेपर भी वास्तवमें असाधारण हो। महात्मा गान्धीने एक अवसरपर कहा है—" जिस व्यक्तिने अखंड ब्रह्मचर्यका पालन करके अपने वीर्यकी पूरी पूरी रक्षा की हो, उसके मानसिक तथा नैतिक बलकी पूरी पूरी कल्पना वही कर सकता है जिसने उसका इस प्रकारका बल देखा है। और लोगोंके लिए उसकी ठीक कल्पना करना असम्भव ही है और उसका यथार्थ वर्णन करना अति दुर्घट है।" ऐसी अवस्थामें " महाजनो येन गतः स पन्थः " के सिद्धान्तका ही अवलम्बन करना चाहिए।

४८. अब तक जितने तत्त्वज्ञ और शास्त्रज्ञ हो गये हैं, वे कुछ अन्धे नहीं थे। इस विषयमें तो किसी प्रकारका विवाद हो ही नहीं सकता कि आर्य वैद्यक और आर्य धर्मशास्त्रोंको संजीवनी विद्याका तत्त्व बहुत पसन्द और मान्य है। आधुनिक पाश्चात्य शास्त्रज्ञोंमें अवश्य ही ऐसे बहुतसे लोग मिलते हैं, जो स्त्री-प्रसंगका अबाधित रूपसे नहीं तो पूरा पूरा समर्थन करते हैं। परन्तु उनमें भी कुछ ऐसे शास्त्रज्ञ मिलते हैं, जो ब्रह्मचर्यका बहुत अधिक समर्थन और प्रशंसा करते हैं।

" शिकागो सोसाइटी ऑफ़् सोशल हाइजीन " नामक संस्थाके दो हज़ारसे अधिक सभासद हैं और वे सबके सब डाक्टर ही हैं। इस संस्थाका एक निश्चय इस प्रकार है—

" आरोग्यके लिए स्त्री-प्रसंग करना कोई आवश्यक बात नहीं है। युवक लोग यह समझते हैं कि जिस प्रकार और सब स्नायु काममें लानेसे मजबूत होते हैं और काममें न लानेसे कमजोर हो जाते हैं, उसी प्रकार प्रजोत्पादक [illegible] भी काममें लानेसे मजबूत होती और काममें न लानेसे कमजोर हो

जाती है। परन्तु जिस प्रकार कभी न रोनेसे मनुष्यकी रोनेकी शक्ति नष्ट नहीं होती, उसी प्रकार व्रतस्थ रहनेसे भी प्रजोत्पादक इन्द्रियकी शक्ति नष्ट नहीं होती। नपुंसकत्व अथवा इन्द्रियकी दुर्बलता प्रायः गरमी और सुजाक रोगोंके कारण अथवा अधिक स्त्री-प्रसंग करनेके कारण होती है।"

"जिन लोगोंने अपने जीवनके किसी विभागमें प्रसिद्धि प्राप्त की हो, उनमें पुरुषत्व पूर्ण रूपसे दिखलाई पड़ेगा। यदि मनुष्यमें पुरुषत्व न होगा, तो वह और लोगोंके साथ क्षुद्र, स्वार्थी, नीच और अनुदार वृत्तिसे व्यवहार करनेवाला और स्त्रियोंके साथ तुच्छतापूर्वक व्यवहार करनेवाला होगा। परन्तु इस पुरुषत्वका उपयोग बहुत समझ-बूझकर करना चाहिए।" (डॉ० स्टाल)

"यदि ठीक युवावस्थामें अनेक प्रकारके अनाचार करके शरीरकी वृद्धिके नैसर्गिक नियमोंका भंग किया जायगा, तो उसका परिणाम तीन प्रकारका— शारीरिक, मानसिक और नैतिक—दिखाई पड़ेगा। विशिष्ट प्रकृतिके लोगोंपर शारीरिक दुष्परिणाम और दूसरे कुछ लोगोंपर इसका मानसिक दुष्परिणाम देखनेमें आवेगा। परन्तु यदि इस पुरुषत्वका अविचारपूर्वक और मनमाना उपयोग किया जायगा, तो शारीरिक अधोगति और मानसिक अवनतिसे किसी प्रकार छुटकारा न हो सकेगा।" (डॉ० मार्क जे० वूढी)

वीर्य-संजीवन वैराग्य नहीं है

४९. कदाचित् यह बात बार बार जोर देकर कहनेकी आवश्यकता न होगी कि वीर्य-संजीवन वैराग्य नहीं है। वीर्य-संजीवन न वैराग्य ही है, न तपश्चर्या ही है और न देह-दंड ही है। इसके लिए किसी साधारण ऐश आराम या सुख आदिसे अलिप्त रहनेकी कोई आवश्यकता या कारण नहीं है। जिन कठोर नियमोंका ब्रह्मचर्यमें पालन करना पड़ता है, उन नियमोंका पालन भी इसमें करना आवश्यक नहीं है। और तो और, इसके लिए "पृथक्शय्या च नारीणां अशस्त्र-विहितो वधः" के नियमानुसार स्वार्थके लिए अपनी स्त्रीको मृत्युका दंड देनेकी भी आवश्यकता नहीं।

इसके लिए आचारमें परिवर्त्तन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है; केवल विचार बदलनेसे ही सब काम हो जायँगे। अपनी स्त्रीपर आसक्ति छोड़नेकी भी आवश्यकता नहीं है, हाँ, स्त्री-प्रसंगके सम्बन्धमें केवल अपनी कल्पना बदलना ही यथेष्ट होगा। ऐश आराम छोड़नेकी कोई जरूरत नहीं है; केवल इस बातकी

चिन्ता रखनी चाहिए कि ऐश आरामका पर्यवसान या अन्त किस बातमें होना चाहिए।

भतस्थ रहनेके लिए केवल इतना ही करना चाहिए कि अपने मनसे यह कल्पना निकाल दी जाय कि स्त्री केवल वीर्य-स्खलनका एक उत्कृष्ट साधन है; और इसके स्थानपर अपने मनमें यह कल्पना स्थिर करनी चाहिए कि स्त्री वास्तवमें पुरुषकी शक्तिकी पूरक और पोषक एक अमोघ शक्ति है और प्रसंग नहीं बल्कि प्रेमपूर्ण तथा एकरसताका सहवास ही परस्पर पोपक तथा सुखद जीवन-क्रमका साधन है।

जब मनमें यह कल्पना स्थिर हो जायगी और स्त्री-पुरुषका सहवास केवल प्रसंग या सम्भोगके लिए नहीं होगा, बल्कि केवल साथ मिलकर रहनेके लिए होने लगेगा, तभी युवक लोग सच्चा स्त्री-सुख और सच्चा वैवाहिक आनन्द अनुभव कर सकेंगे।×

उस दशामें आपसमें एक दूसरेके प्रति उपेक्षा, अनास्था या दुर्भाव नहीं उत्पन्न होगा। इन सब बातोंका कहीं सम्पर्क भी न होगा और इसके बदले दोनोंका एक दूसरेके प्रति अनुराग अधिक दुर्दमनीय हो जायगा और वह सदा अधिकाधिक आनन्ददायक और ताजा बना रहेगा।

संजीवन व्रत

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः

५०. दिग्विजयी कर्मठता, दुर्दमनीय आकांक्षा, निर्मल शील, निर्भय वृत्ति, अचल शान्ति, निष्ठुर सत्यप्रीति और निर्विकल्प एकनिष्ठा आदि वीर्यके जो लक्षण हैं, वे सब केवल ब्रह्मचर्य धारण करनेसे ही प्राप्त होते हैं।

जिस दुर्दमनीय कर्मठताके बलपर भीष्म अपनी भीष्मप्रतिज्ञा करनेमें समर्थ हो सके थे, जिस निर्विकल्प एकनिष्ठाके बलपर महाराज रामचन्द्र सदा एकवचनी, एकवाणी और एकपत्नी बने रहे, जिस विश्वविजयी आत्म-निष्ठाके बलपर हनुमानजी रामचन्द्रजीके दूत नियत हुए थे, जिस दुर्दमनीय आकांक्षाके बलपर शिवाजीने मराठा साम्राज्यकी स्थापना की थी, जिस असाधारण कार्यनिष्ठाके बलपर तिलक लोकमान्य हुए थे और जिस अद्वितीय

× जहँ निर्मल मन मिलि रमें, गृहसुख कहिए सोय।
जेती बरनौ माधुरी, तेती थोरी होय॥

सत्यनिष्ठाके बलपर गान्धी महात्मा बने, यदि व्यापक दृष्टिसे उन सबका कोई अधिष्ठान बतलाया जा सकता है, तो वह ब्रह्मचर्य ही है।

संजीवन व्रतके लिए, पुरुषके वीर्यके केवल दो ही उपयोग माने गये हैं—एक तो शरीरका संजीवन और दूसरा प्रजोत्पादन। शरीर-संजीवन करनेके लिए वीर्यको कभी स्खलित नहीं होने देना चाहिए। केवल वही वीर्यस्खलन क्षम्य है, जो शुद्ध प्रजोत्पादनके लिए, प्रजोत्पादनकी ही इच्छासे और स्त्री तथा पुरुष दोनोंकी इच्छासे किया जाय।

ऋतौ गच्छति यो भार्यामनृतौ नैव गच्छति।
यावज्जीवं ब्रह्मचारी मुनिभिः परिकीर्तितः॥—धर्मसिन्धु।

इस श्लोकमें इसी तत्त्वका प्रतिपादन किया गया है कि अनिष्ट दिवसोंको छोड़कर केवल ऋतु-कालमें ही स्त्री-गमन करनेवाला पुरुष गृहस्थाश्रमी ब्रह्मचारी है; और इस प्रकार इसमें संजीवन व्रतका ही समर्थन किया गया है।

५१. "यदि विवाह हो गया तो इससे क्या? सृष्टिका नियम तो ऐसा है कि जिस समय स्त्री और पुरुष दोनों ही प्रजोत्पादन करना चाहते हों, केवल उसी समय वे ब्रह्मचर्यका भग करें। यदि कोई दम्पति इस प्रकार विचारपूर्वक एक अथवा चार पॉच वर्ष तक ब्रह्मचर्यका पालन करेगा, तो वह कुछ पागल नहीं हो जायगा और उसके पास वीर्यरूपी पूँजी बहुत अच्छी तरह एकत्र रहेगी।" —महात्मा गान्धी।

यदि वीर्य-संजीवनी-विद्याको पूरी और कठोर दृष्टिसे देखते हुए कहा जाय, तो उससे कभी शरीर-संजीवनकी कोई हानि या अपाय नहीं हो सकता। और यदि केवल शुद्ध प्रजोत्पादनकी इच्छासे ही, प्रजोत्पादनकी पूरी शक्ति रहते हुए और नितान्त शुद्ध भावनासे स्त्री-प्रसंग करना हो, तो ऐसा प्रसग अठारह महीनेके अन्दर नही किया जा सकता।

अठारह महीने!

यदि लगातार अठारह महीनो तक स्त्री-प्रसंग न किया जाय, तो वह पुरुषके लिए प्रायः ब्रह्मचर्य व्रतके समान ही हो जायगा और स्त्रीके लिए तो वह पूरा पूरा ही ब्रह्मचर्य होगा।

जब अपने मनमें व्रतस्थ रहना ही निश्चित कर लिया जाय, तब स्त्रीके प्रेम और स्त्री-सहवासमें किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं होने देनी चाहिए; बल्कि उस

कल्पनाको विलक्षण उपायोंसे रोकनेका प्रयत्न करना चाहिए, जिसके अनुसार लोग यह समझते हैं कि स्त्रीका उपयोग केवल वैषयिक ही है। जब इस प्रकारका प्रयत्न किया जायगा और कुछ दिनोंमें वैषयिक कल्पना कम हो जायगी, तब इसके फल-स्वरूप वीर्य अपने अधीन हो जायगा। जब अपने मनपर इस प्रकारका पूरा पूरा अधिकार प्राप्त हो जाय कि प्रत्यक्ष रूपसे अथवा अनजानमें किसी प्रकार हमारी इच्छाके विरुद्ध हमारा वीर्य स्खलित नहीं हो सके, तब कमसे कम एक वर्ष तक तो निर्विकल्प-रूपसे व्रतस्थ रहा जा सकता है।

इस प्रकार विचारोंकी पवित्रताके कारण जब ब्रह्मचर्य सुलभ हो जायगा और इतने दीर्घ काल तक बराबर टिका रहेगा, तब पति और पत्नी दोनोंको ही सन्तानकी इच्छा होगी और दोनोंकी प्रकृति भी सब प्रकारसे शान्त और विकार आदिसे रहित हो जायगी। उस समय पहलेसे निश्चित किये हुए समयमें ही स्त्री-प्रसंग करना चाहिए।

यह समय यों तो देखनेमें बहुत अधिक जान पड़ेगा और इतने दिनों तक व्रतस्थ रहना प्रायः असम्भव सा जान पड़ेगा। पर वास्तवमें बात ऐसी नहीं है। उत्तर भारतके जो 'पुर्विए' आदि बहुतसे लोग भिन्न भिन्न देशोंमें अनेक प्रकारके काम करनेके लिए जाते हैं, वे साल डेढ़ साल तक व्रतस्थ रहना कोई बड़ी बात ही नहीं समझते। इसके विपरीत एक वर्षके अन्दर दो चार बार स्त्री-प्रसग करना ही उन्हें बहुत काफ़ी जान पड़ता है।

संजीवन व्रतका माहात्म्य

यावद्बिन्दुः स्थिरो देहे तावत्कालभयं कुतः।

५२. इस प्रकार व्रतस्थ रहनेसे शरीर तथा मनकी प्रत्येक शक्ति और गुणका निरन्तर विकास ही होता जाता है। उक्त विकास होता तो धीरे धीरे है, परन्तु उस विकासकी कोई और किसी प्रकारकी मर्यादा स्थापित नहीं कर सकता। वह विकास किसी प्रकार रोका नहीं जा सकता। इस विकासमें किसी प्रकारकी बाधा उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य किसी बाह्य शक्तिमें नहीं है। केवल व्रत भंग करनेसे ही इस विकासमें बाधा हो सकती है।

इस विद्यासे मनकी अनेक सोई हुई शक्तियाँ जाग उठती हैं। इससे दूसरोंके विचार जाने जा सकते हैं और भविष्यका ज्ञान प्राप्त किया जा

सकता है। मनुष्यके स्वभावकी ऐसी परख होने लगती है जिसमें कभी भूल होती ही नहीं। इस व्रतका पालन करनेसे स्त्री और पुरुषमें विलक्षण आकर्षक शक्ति आ जाती है। ऐसे लोगोंकी ओर तुरन्त सबका ध्यान खिंच जाता है। लोगोंके मनमें उनके सम्बन्धमें उच्च कल्पनाएँ उत्पन्न होने लगती हैं। ऐसे आदमी जिसपर चाहें उसपर, अपना प्रभाव डाल सकते और अपनी छाप बैठा सकते हैं। यदि एक वर्ष तक भी वीर्य शरीरमें रक्षित रक्खा जाय, तो शरीरमें एकत्र होनेवाले ओजके कारण उस व्यक्तिका शरीर वज्रके समान और बुद्धि बृहस्पतिके समान हो जायगी। ऐसे पुरुषके शारीरिक तथा मानसिक बल और तेजकी विलक्षण रूपसे वृद्धि होगी और स्त्रीकी मोहक युवावस्था और मृदु सद्गुणोंकी मोहकता तथा मृदुता कभी कम न होगी।

पुरुषके वीर्यमें जो प्रजोत्पादक जीव-कण होते हैं, उनका निर्माण केवल उसी समय होता है, जब इच्छापूर्वक वीर्य-स्खलन किया जाता है। उस समय ऐसे हजारों जीव-कण उत्पन्न होते हैं। यदि एक वर्षसे अधिक समय तक कभी वीर्य स्खलित न किया जाय, तो शरीरमें जो विलक्षण शक्ति उत्पन्न होती है, उससे स्त्री-प्रसंगके समय उत्पन्न होनेवाले जीव-कण बहुत अधिक चैतन्ययुक्त हो जाते हैं और पूरे रूपसे बढ़ जाते हैं। ऐसे जीव-कणोंसे जो बालक उत्पन्न होता है, वह संसारमें बहुत बड़े बड़े कार्य बहुत सहजमें कर सकता है। और जब इस प्रकारका जीव-कण गर्भमें जाता है, तब उसे उदरमें रखने और प्रसव करनेकी दशामें स्त्री रोग-भोग और वेदना आदिसे किसी प्रकारका कष्ट नहीं पाती और न कोई दुर्दशा ही भोगती है, और गर्भ धारण करना तथा सन्तान उत्पन्न करना उसके लिए बहुत आनन्ददायक, नवजीवन-प्रद और अभिमानास्पद हो जाता है।

संजीवन-व्रतका माहात्म्य ऐसा ही है। यदि स्त्री तथा पुरुष और विशेषतः पुरुष अपनी वैषयिक वासनापर इस प्रकार अधिकार रक्खेंगे और संजीवन-विद्याका रहस्य समझ लेंगे, तब वे कभी ऐसी सन्तान उत्पन्न नहीं करेंगे, जो केवल खाद्य पदार्थोंका नाश करनेवाली और भूमिका भार हो। थोड़ी आयु-वाले और ऐसे लोग संसारमें ढूँढ़े नहीं मिलेंगे, जो स्वयं अपने जीवनको भार समझेंगे और जो शीघ्र ही अपने मर जानेकी कामना करेंगे। माता-पिताको कभी यह कहकर दुखी होने और पछतानेका अवसर नहीं मिलेगा कि "इस लड़केने तो हमारे पीछे रोग और शोक लगा दिये।"

५३. संजीवन व्रतके जो सुन्दर परिणाम होते हैं, भला क्या लोगोंके समक्ष उनके कहनेकी भी कोई आवश्यकता है ? संजीवन व्रतका पालन करनेसे शरीरके रोम-रोममें सुखद चैतन्य भर जाता है और मन सदा आनन्दपूर्ण तथा स्फूर्तियुक्त बना रहता है। बुद्धि तीव्र होती है, ग्रहण शक्ति या धारणा शक्ति बढ़ती है और गहनसे गहन विषय चटपट समझमें आने लगते हैं। स्वभावमें निश्चय-बुद्धि आती है, कार्यनिष्ठा बढ़ती है और उतावलापन, स्नायु-दुर्बलता और अपने आपको तुच्छ समझनेकी प्रवृत्ति नष्ट होने लगती है। शरीरकी सहन-शक्ति और मनका साहस तथा बल बढ़ता है। नीतिविषयक कल्पना, न्यायवृत्ति, अभिमान, सत्यनिष्ठा, पवित्रताकी कल्पना और आनन्द-पूर्ण वृत्तिका विकास होता है।

वीर्य-संजीवनसे होनेवाले अनेक लाभोंमेंसे एक बड़ा लाभ यह है कि इसके योगसे नींदकी आवश्यकता बहुत कम हो जाती है। बहुत देर तक और गहरी नींद सोनेकी बहुत अधिक आवश्यकता नहीं रह जाती। यदि केवल महीने दो महीने भी लाचारीमें पड़कर और अपरिहार्य आवश्यकताके कारण नहीं बल्कि आत्म-संयमके बलपर निर्मल वीर्य-संरक्षण किया जा सके, तो भी इसके योगसे निद्रासम्बन्धी यह सुपरिणाम अवश्य देखनेमें आवेगा। वीर्य-संरक्षणका समय ज्यों ज्यों बढ़ता जायगा और उसके योगसे मनोवृत्ति ज्यों ज्यों अधिक निर्मल और शरीर अधिक ओजस्वी बनता जायगा, त्यों त्यों निद्राका समय और गहरापन भी बराबर कम होता जायगा; और थोड़े समयमें सात आठ घंटे सोनेके बदले घंटे दो घंटेकी नींद भी शरीरको सुख देने लगेगी, उसके अन्तमें शरीरमें स्फूर्ति दिखाई पड़ने लगेगी, ताजापन और नया बल आ जायगा, सारा श्रम या थकावट दूर हो जायगी और शरीरकी सारी छीज या कमी पूरी हो जायगी।

एसी निद्राके समय मनमें वैषयिक वासनाका स्पर्श तक न होगा, वीर्यावयव जागृत होगा, उसमें वीर्य उत्पन्न होने लगेगा और वह वीर्य फिर शरीरमें जाकर फैलने लगेगा। उसके योगसे निद्रा-भंग होने और जागने-पर पुरुषको अपने शरीरमें बहुत बल और ताजापन दिखलाई पड़ेगा, और वह निर्मल तथा उत्साहपूर्ण मनसे दूने जोरोंसे नये काममें लग सकेगा।

इसके योगसे निद्राका समय तो बहुत कम हो जायगा और निद्राके शारीरिक तथा मानसिक पुनरुज्जीवनका जो कार्य होता है, वह बहुत

अधिक बढ जायगा और बहुत सफाईके साथ होने लगेगा । और इस कारण शरीरकी कार्यक्षमता बहुत बढ़ जायगी ।

मुख-कमलकी मोहकता

५४. प्रत्येक नवयुवक यह चाहता है कि मेरी प्रिय पत्नीका मुख देखनेमें बहुत मोहक हो; और प्रत्येक युवती भी यही चाहती है कि मेरा मुख देखनेमें बहुत मोहक जान पड़े । अपने मुखको देखनेमें सुन्दर और तेजस्वी बनानेके लिए स्त्रियाँ आँखोंमें काजल या सुरमा लगाया करती थीं और अब भी प्रायः लगाती हैं, मुखपर अनेक प्रकारके उबटन आदि लगाती है, शरीरमें भी अनेक प्रकारके उबटन लगाती हैं, और आजकल तो अनेक प्रकारके तैलोंका अथवा पाउडरों आदिका भी व्यवहार होने लगा है । परन्तु यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय, तो इस प्रकारके उपचारोंसे सौन्दर्यदायक और सौन्दर्यवर्धक गुण प्राप्त नहीं होते । सच्चा सौन्दर्य तो शरीरके अन्दर ही या आत्मनिष्ठ होता है, वह बाह्य उपचारोंमें नहीं रहता ।

यदि पुरुष अपनी वासनाओंकी तृप्तिके लिए स्त्रीकी शक्ति, यौवन और जोम धूलमें न मिलावे, यदि पुरुष अपने शारीरिक विषयोपभोगके लिए स्त्रीको कुछ कष्ट न दे, और स्त्रीको वीर्य-संरक्षणका पूरा पूरा अवसर दे और साथ ही अपने वीर्यका भी संरक्षण करके रहे और दोनो एक दूसरेके लिए स्फूर्तिप्रद, शक्तिप्रद और शान्तिप्रद हों, तो अत्यन्त कुरूप मुखपर भी मोहक तेज, सुन्दर जवानी और आकर्षक छटा चमकती रहेगी, और कविका यह वर्णन यथार्थ हो जायगा—

> चन्द्रतुल्य मुख, नयन मनोहर, स्वर्ण वर्ण वपु, कुन्तल सुन्दर ।
> पीन नितम्ब, उरोज उजागर, नारी मनहुँ रूपकौ सागर ॥

साधुओं, वक्ताओं, उपदेशकों, शिक्षकों और व्यापारियोंको अपना काम बहुत अच्छी तरह और तेजीके साथ चलानेके लिए और दूसरोंपर अपना प्रभाव डालनेके लिए केवल इस बातकी आवश्यकता नहीं होती कि वे अपने कामकी शिक्षा प्राप्त करके ही निश्चिन्त हो जायँ । उनके शरीर, बात-चीत और विचारोंमें भी आकर्षण होनेकी आवश्यकता होती है । वीर्य-संजीवनसे प्रत्येक पुरुषमें विलक्षण आकर्षण आ जाता है । *

---

* सन्तोषः त्रिषु कर्त्तव्यः स्वदारे भोजने धने ।
त्रिषु चैव न कर्त्तव्यो दाने तपसि पाठने ॥

इसी लिए संजीवनी विद्याको यशस्विताका मूल मन्त्र समझना चाहिए। ऐसा मनुष्य जो कार्य केवल इच्छासे कर डालेगा, वह कार्य हीनवीर्य मनुष्य बहुत कुछ उद्योग करके भी न कर सकेगा। और जो कार्य वीर्यवान् मनुष्य प्रयत्नपूर्वक करेगा, वह कार्य वीर्यहीन मनुष्य अपना सब कुछ खर्च करके भी न कर सकेगा।

संजीवनी विद्या और धर्मशास्त्र

प्रजायै गृहमेधिनाम्।

५५. आर्य संस्कृतिमें तत्त्वतः भी संजीवनी विद्याका निर्विवाद रूपसे समर्थन और प्रतिपादन किया गया है।

ब्रह्मचर्य आश्रममें स्त्रियोंकी ओरसे पराङ्मुख रहनेकी हिन्दुओंकी जो कल्पना है, वह अत्यन्त उज्ज्वल, उग्र और व्यापक है। कहा गया है—

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च॥

—दक्षस्मृति।

अर्थात् स्त्रियोका स्मरण, वर्णन, उनके साथ हँसना खेलना, उनकी ओर काम भावसे देखना, उनके साथ छिपकर या धीरे धीरे बात करना, उनके साथ सम्भोग करनेका विचार मनमें लाना, उसके लिए प्रयत्न करना और संग करना ये ब्रह्मचर्यको नष्ट करनेवाले आठ प्रकार हैं।

धर्मशास्त्रोंने गृहस्थाश्रममें रहनेवाले लोगोंको भी सब प्रकारके नियमोंसे जकड़ रखा है। धर्मसिन्धुमें कहा है—ऋतौ तु गमनावश्यकं अन्यथा भ्रूणहत्यादोष·" अर्थात् ऋतु कालमें स्त्रीके साथ गमन करना आवश्यक है; नहीं तो भ्रूण-हत्याका दोष अथवा पातक लगता है। मनुस्मृतिके तीसरे अध्यायमें इस सम्बन्धमें बहुतसे नियम दिये गये हैं। उसमें जिन दिनोंमें स्त्रीके साथ गमन करनेकी मनाही की गई है, उनको और बाकी दूसरे अशुभ दिवसोको यदि मिला दिया जाय, तो साल भरमें शायद एकाध दिन ही स्त्रीके साथ गमन करनेके लिए उचित ठहरेगा। इस प्रकार इस विषयमें संजीवनी विद्या और धर्म-शास्त्रका बिलकुल एक ही मत है।

परन्तु धर्म-शास्त्र बिलकुल साधारण पुरुषोंके लिए हुआ करता है [illegible] आचरणीय नियम आदि बनाता है; और इसी लिए उसमें

श्रेयस् और प्रेयस् दोनोंको एकत्र मिलानेका प्रयत्न करना पड़ता है। इस सिद्धान्त या नीतिके कारण धर्मशास्त्रने दो सुभीते लोगोंको दिये हैं। एक सुभीते (मनु० ३—५०) के अनुसार लोगोंको हर महीने साधारणतः दो दिन स्त्री-प्रसंगके लिए मिल सकते हैं। और दूसरे सुभीतेके अनुसार जिस समय स्त्रीकी इच्छा हो, उसी समय किसी प्रकारके विधि-निषेधको न मानते हुए, उसके साथ प्रसंग किया जा सकता है। इस सम्बन्धमें उसमें इस प्रकारकी आज्ञा दी गई है "—स्त्रीणां वरमनुस्मरन् पत्नीच्छयानृतावपि गच्छन्न दोषभाक्।" परन्तु साथ ही यह भी कह दिया है कि "—किन्तु ब्रह्मचर्यहानिमात्रं।" अर्थात् यदि ऐसा किया जायगा, तो उससे ब्रह्मचर्यकी हानि अवश्य होगी।

५६. अब तक जितनी बातें लिखी गई हैं, उन सबको पढ़कर और विशेषतः गत प्रकरणके अन्तिम अंशसे सावधान होकर कुछ लोग यह प्रश्न कर सकते हैं कि आप तो मनोनिग्रहके सम्बन्धमें बहुत बड़ी बड़ी गप्पें हाँक गये; परन्तु क्या स्त्री और पुरुषके सम्भोगके सम्बन्धमें पत्नीके मतका कोई मूल्य ही नहीं है? इस प्रश्नका जो सयुक्तिक उत्तर हो सकता था, वह धर्मसिन्धुके आधारपर गत प्रकरणमें दिया जा चुका है। अब इसपर एक दूसरा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या ऐसी दशामें व्रतका आचरण सम्भव है? यह नया प्रश्न बहुत ही नाजुक है। इसका कारण यह है कि इसका उत्तर देते समय समस्त स्त्री-जातिके सम्बन्धमें विधान बनाने पड़ेंगे।† इस प्रश्नका उत्तर यही है कि हाँ, सम्भव है।

एक सुभाषित है—"कामश्चाष्टगुणः स्मृतः।" अर्थात् पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंमें काम-वासना अठगुनी होती है। परन्तु इस सुभाषितमें जो 'काम' शब्द आया है, उसका अर्थ 'सम्भोग' नहीं है। यहाँ कामसे केवल वासना या इच्छाका ही अभिप्राय समझना चाहिए। पुरुषोंकी सम्भोगकी इच्छा सहज-क्षोभी और प्रत्यक्ष (Positive) होती है। परन्तु स्त्रियोंकी सम्भोगकी इच्छा ऐसी नहीं हो सकती। अब इस सम्बन्धमें यह प्रश्न वादग्रस्त है कि स्त्रियोंकी सम्भोगकी इच्छा स्वभावतः स्वयक्षोभी है किंवा नहीं। सब जगह

---

† "Woman is the final umpire as to its frequency. Following her lead will usually conduct all to matrimonial harmony, ignoring it to discord,—Prof. O. S. Fowler.

प्रायः यही बात देखनेमें आती है कि स्त्रियोंमें ऋतुमती या वयस्क होनेके कुछ वर्ष बाद तक और कुछ अवस्थाओंमें एक सन्तान उत्पन्न होने तक काम-वासना बिलकुल होती ही नहीं। उन्हें इतने समय तक काम-संवेदनाकी कोई अनुभूति नहीं होती। इसके उपरान्त धीरे धीरे उन्हें यह संवेदना या इंद्रिय-क्षोभ आरम्भ होने लगता है। परन्तु उस समय भी वह पुरुषोंकी वासनाकी तरह सहजक्षोभी और स्वयंक्षोभी बिलकुल नहीं होता। पुरुष यदि स्त्रीके साथ बार बार सम्भोग न करे, तो स्त्रीमें यह स्फुरण कभी इतनी जल्दी न होगा। और स्त्रियोंमें स्वाभाविक रूपसे वासनाकी जो यह निवृत्ति होती है, उसीके आधार-पर गृहस्थाश्रममें ब्रह्मचर्यकी स्थापना की जा सकती है। इसके लिए नव-विवाहित युवकोंको पहलेसे ही सावधान रहना चाहिए।

एक बात स्पष्ट रूपसे बतला देना बहुत ही आवश्यक है। वह यह कि स्त्रीकी प्रत्यक्ष सम्भोगकी इच्छा और साधारण सहवासकी इच्छाको अतृप्त रखना एक पाप है और खतरनाक है। इसी लिए हम यह कह देना चाहते हैं कि संजीवन व्रत सदा स्त्रीकी अनुमतिसे ग्रहण करना चाहिए और स्त्रीकी ही सहायतासे उसका पालन करना चाहिए।

५७. जब मनुष्य व्रतस्थ रहनेका निश्चय कर लेता है और आत्मसंयम आरम्भ कर देता है, तब शीघ्र ही, प्रायः एक मासके अन्दर ही, एक ऐसा समय आता है जब कि इस निश्चयका पालन करना बहुत ही कठिन और विकट जान पड़ता है। उस समय मनमें अनेक प्रकारकी प्रबल भावनाएँ उत्पन्न होने लगती हैं और यदि अपना निश्चय उतना ही प्रबल नहीं होता, तो साधारण मनुष्य उस समय अवश्य प्रतिज्ञाभ्रष्ट हो जाते हैं।

यदि इस निश्चित समयके उपरान्त और दो सप्ताह तक वीर्य-संरक्षण कर लिया जाय, तो फिर बाकी सारा काम आपसे आप हो जाता है। उस समय यह कहा जा सकता है कि व्रतस्थ मनुष्यने इस मार्गका पहला पड़ाव पूरा कर लिया। बस, इसके उपरान्त वीर्य-संजीवनके सुन्दर परिणाम धीरे धीरे दिखाई पड़ने लगते हैं। वह व्रतस्थ मनुष्य धीरे धीरे सूक्ष्म संवेदना-क्षम और कुशाग्र बनता जाता है।

परन्तु यदि कोई मनुष्य अत्यन्त कामासक्त होगा, तो केवल इतना समय

बीत जानेसे ही उसका मार्ग सुलभ नहीं हो जायगा। उसके अन्तश्चक्षुओंके आगे अनेक प्रकारकी मोहक आकृतियाँ दिखाई पड़ने लगेंगी और मनमें अनेक प्रकारकी कल्पनाएँ तथा तरंगें उठने लगेंगी। ऐसा अनुभव होने लगेगा कि कल्पनाके ये खेल विलक्षण और कल्पनातीत हैं। इस प्रकारका अनुभव कुछ महीनों तक होता रहेगा और ज्यों ज्यों समय बीतता जायगा, त्यों त्यों उसका परिमाण भी बढ़ता जायगा। परन्तु इस बातमें कोई सन्देह नहीं कि यदि पहला महीना ठीक तरहसे बीत जायगा और उसमें पूर्ण रूपसे वीर्य-संरक्षण हो जायगा, तो भी कमसे कम इतना अवश्य जान पड़ने लगेगा कि उसके कारण हमारे शरीर और मन दोनोंकी शक्ति धीरे धीरे बराबर बढ़ रही है। और जब तक वीर्य-स्खलन न होगा, तब तक यह सुधार और वृद्धि बराबर होती रहेगी। कुछ लोगोंको तो इस सुपरिणामके लिए वर्ष भर तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है। परन्तु ऐसे लोगोंको केवल महीने दो महीने व्रतस्थ रहकर ही निराश नहीं हो जाना चाहिए।

यदि बीचमें ही वीर्य-स्खलन हो जायगा, तो सारी तपस्या व्यर्थ हो जायगी, और उस समय यह बात भी भली भाँति समझमें आ जायगी कि तुरन्त वीर्यनाश होनेसे कितना अधिक अनर्थ होता है।

संजीवनी विद्या और फलित ज्योतिष

५८. वैदिक साहित्यमें यह देखनेमें आता है कि सूर्यकी आत्माके रूपमें और चन्द्रमाकी मनके रूपमें कल्पना की गई है और ग्रह-ज्योतिष-शास्त्रमें यह कल्पना रूढ है। ग्रह-ज्योतिष-शास्त्रोंमें यह बात मानी जाती है कि सूर्य आत्मा है और चन्द्रमा मन है; सूर्य पुरुष है और चन्द्रमा प्रकृति है। इस कल्पनाके अनुसार जब मन और आत्मा दोनों संलग्न होते हैं, तब वृत्ति स्थिर होती है। और मन जिस समय आत्मासे दूर और अकेला रहता है, उस समय वह अस्थिर और चंचल रहता है। जिस समय कुंडली सामने रखकर कुछ कहना होता है, उस समय यह देखा जाता है कि जन्म-कुंडलीमें सूर्य कहाँ है और चन्द्रमा कहाँ है। कुंडलीमें सूर्य जिस स्थानपर होता है, उसी स्थानपर यदि चन्द्रमा भी आ जाता है, तो यह माना जाता है कि मन स्थिर होता है, और जब जन्म-कुंडलीमें चन्द्रमा मूल स्थानमें आता है,

उसके पीछे कोई बल नहीं रह जाता और स्त्री तथा पुरुष-ग्रहोंमें पूर्ण विरह होता है, उस समय मन चंचल होता है और काम-वासना बढ़ती है।

ऐसे ही अवसरपर यह कहना पड़ता ह कि देखो, निश्चय डिगना चाहता है। सँभलकर रहो। मोटे हिसाबसे चन्द्रमा प्रत्येक राशिमें प्रायः २॥ दिन तक रहता है। आजकल मास-गणनाकी जो पद्धति प्रचलित है, उसके हिसा-बसे यह समय महीनेमें २॥ दिनोंसे अधिक नहीं होता। स्त्रियोंके सम्बन्धमें यह बात और भी स्पष्ट रूपसे देखनेमें आती है। स्त्रियोंके मासिक रजोदर्श-नका समय साधारणतः चान्द्र मासके अनुसार ही आता है।

जब संजीवन व्रत धारण करनेका निश्चय कर लिया जाता है, तब उसके बाद भी चन्द्रमा अपने ग्रहमें आया ही करता है। उस समय निश्चय दृढ रखनेका काम बहुत विकट होता है। यदि मनुष्य बहुत अधिक कामी होता है, तो इस समय विलक्षण स्वप्न और कल्पनाएँ उसे बहुत दिक करती हैं और आगे चलकर हर महीने उनकी प्रबलता बढ़ती ही जाती है। यदि इस अवसरपर उस समय तक निश्चय न तोड़ा जाय जब तक चन्द्रमा जन्म कुंड-लीमें सूर्यके स्थानमें न चला जाय, तो इस व्रतका सुपरिणाम दिखाई पड़ने लगता है। वीर्य उस समय ओजके रूपमें रक्तके अभिसरणमें मिलने लगेगा; और यदि मनुष्य शान्त वृत्तिका होगा, तो उसे एक प्रकारकी सुखद और प्रशान्त निद्रा आने लगेगी और यदि वह कामुक होगा, तो उसकी कर्तृत्व-शक्ति बढ़ने लगेगी।

१९ अप्रैलसे २० मई तक सूर्य उच्चका रहता है, और २३ सितम्बरसे २२ नवम्बर तक वह नीचका रहता है। जिन लोगोंका जन्म उच्चके सूर्य होनेकी दशामें होता है, उनकी वृत्ति प्रायः शान्त और स्थिर होती है; और जिनका जन्म नीचके सूर्य होनेकी दशामें होता है, उनकी वृत्ति प्रायः चंचल हुआ करती है।

जब तक स्वस्थ शरीर रहे औ जरा पास नाहिं आवे।
जब तक इन्द्रियमें बल हो औ मृत्यु न मुख दिखलावे॥
तब तक चतुर यत्न सब कर ले, आत्मप्राप्ति-सुख-अर्थ।
आग लगे पर कूआँ खोदे, सब श्रम जाता व्यर्थ॥

५९. यदि कोई यह प्रश्न कर बैठे कि 'आपने संजीवनी विद्याका महत्त्व तो खूब अच्छी तरह बतलाया और उसका बहुत अच्छा वर्णन किया, परन्तु यदि यह बात समझमें आ जाने पर भी अपनी ओर ध्यान आकृष्ट न कर सके, उसके अनुसार कार्य न हो सके, तो इसका क्या उपाय है?' तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। अब हम यहाँ इसी प्रश्नका उत्तर देनेका प्रयत्न करेंगे।

ऊपरके अवतरणोंमें मनुष्यकी इसी सम्बन्धकी स्थिति बतलाई गई है और उसके कारण भी बतला दिये गये हैं। और उन्हीं कारणोंके साथ साथ उपायोंका भी दिग्दर्शन करा दिया गया है। यदि कोई यह समझ ले कि हमारा दोष यही है कि हमारा मन हमारे वशमें नहीं रहता, तो भी वह दोष या अवगुण छोड़ नहीं देता। उसका अभिप्राय यही है कि यदि हम अपने अवगुणोंको दूर करना चाहें, तो हमें मनोनिग्रह करना सीखना चाहिए।

परन्तु मनोनिग्रह कुछ लड़कोंका खेल नहीं है और न वह परोपदेश ही है। जैसा कि गीतामें कहा गया है, हवाकी गठरी बाँधना और मनोनिग्रह करना दोनों ही काम समान् रूपसे विकट हैं। परन्तु फिर भी यह काम नितान्त असम्भव नहीं है।

"अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येन च गृह्यते।"

अभ्यास और वैराग्य इन दोनों मार्गोंसे मनोनिग्रह भी साध्य हो जाता है। यदि मनुष्य यह बात समझता हो कि मुझमें मनोनिग्रह और वैराग्यकी कमी है, तो आत्म-सुधारकी दृष्टिसे सुधारकी यह पहली सीढ़ी है। हममें जो यह एक अवगुण है, वह अवगुण क्यों है? सद्गुण क्यों नहीं है? इसका दुष्परिणाम हमें किस किस रूपमें भोगना पडता है? पहले इन्ही सब बातोंकी जानकारी होनी चाहिए। ये सब बातें कमसे कम अपने मनमें अच्छी तरह समझमें आ जानी चाहिए। इनके विषयमें मनमें किसी प्रकारकी शंका या अनिश्चय नहीं रहना चाहिए।

वीर्य-नाशकी प्रवृत्ति बड़ा भारी और अत्यन्त घोर दुर्गुण है। वह आत्मोन्नतिका शत्रु है और आत्म-नाशका राजमार्ग है। ऐसी दशामें क्या आपकी समझमें यह बात नहीं आती कि आपको जहाँ तक हो सके, इससे मुक्त होना चाहिए?

अभ्यास और वैराग्य

६०. अभ्यास और वैराग्य दोनोंके योगसे मनोनिग्रह किया जा सकता है। इस सम्बन्धके नियम ऊपर बतलाये जा चुके हैं कि यह मनोनिग्रह किस मार्गसे करना चाहिए।

वैराग्यका नाम सुनते ही बहुतसे लोगोंके सामने सारे शरीरमें भभूत रमानेवाले वैरागी अथवा गेरुए वस्त्र पहननेवाले संन्यासी आ जायँगे। वे समझेंगे कि वैराग्य धारण करना साधु या सन्यासी हो जाना ही है। पर वास्तवमें यह बात नहीं है। वैराग्य शब्द विरागका भाववाचक रूप है और उसका शुद्ध अर्थ राग या आसक्तिका अभाव है। इसका मतलब यही है कि किसी विशिष्ट विषयके प्रति मनमें किसी प्रकारका अनुराग या आसक्ति न रह जाय। इस अवसरपर हमारा अभिप्राय केवल उतने ही नियमित वैराग्यसे है जितनेसे मनमें स्त्रीके साथ सम्भोग करनेकी आसक्ति न रह जाय—उसमें स्त्रियोंके साथ सम्भोग करनेकी वह आसक्ति न रह जाय, जो "कामातुराणां न भयं न लज्जा" के अनुसार दिखाई पड़नेवाले मनुष्योंको निःसंग और निःसत्व बना देती है।

हम यहाँ जिस विषयका विवेचन कर रहे हैं, उसके लिए वैराग्यका केवल इतना ही अर्थ है कि मनुष्य यह बात बहुत अच्छी तरह समझ ले कि स्त्रीके साथ सम्भोग करना और अपना वीर्य नष्ट करना, बहुत ही अनिष्टकारक है और वह अपने वीर्यकी रक्षा करनेका दृढ निश्चय कर ले।

अभ्याससे हमारा यहाँ यह अभिप्राय है कि मनुष्य अपने वीर्यकी रक्षाका इस प्रकार जो दृढ निश्चय करे, उसे सदा स्थिर रखनेका पूरा प्रयत्न करे; उस निश्चयका सदा नियमानुसार पालन करता रहे; सदा उसके अनुसार आचरण करता रहे और उसकी पुनरावृत्ति करता रहे।

अब तक वीर्य-नाशके अनिष्ट परिणामोंका अनेक प्रकारसे इस उद्देश्यसे विवेचन किया जा चुका है कि लोगोंका मन व्यर्थके वीर्य-नाशकी ओरसे हट जाय, इसके प्रति उनके मनमें घृणा और तिरस्कार उत्पन्न हो और वीर्य-नाश सम्बन्धी उनकी आसक्ति नष्ट हो। इसके सिवा मनोनिग्रहके मुख्य तत्त्व भी बतलाये जा चुके हैं। अब आगे हम यह बतलाना चाहते हैं कि उन तत्त्वोंके अनुसार किस प्रकार अभ्यास किया जा सकता है।

निश्चयका बल

६१. इष्ट-साधनके राजमन्दिरका भव्य द्वार खोलनेके लिए मनका निश्चय ही मूल मन्त्र और सबसे बड़ी कुंजी है। निश्चय करनेसे पहले यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि निश्चय क्यों करना चाहिए और क्यों न करना चाहिए। यह बात अच्छी तरहसे समझ लेनेके बाद निश्चय करना बहुत सुगम हो जायगा।

गीतामें कहा है—

> उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
> आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥
>
> —गीता ६, ५

निश्चय करनेका मार्ग सुगम करनेके लिए यहाँ एक बात बतला देना बहुत आवश्यक है। वह यह कि संजीवन व्रतमें पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करना आवश्यक नहीं है। महात्मा गान्धीके कथनानुसार इस संसारमें ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले माईके लाल बहुतसे हैं।

चाहे निर्मल ब्रह्मचर्यका पालन करनेवालोंकी संख्या बहुत अधिक न हो, पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि सब मिलाकर ऐसे लोगोंकी संख्या कम नहीं है जो बहुत अधिक परिमाणमें अपने वीर्यका संरक्षण करते हैं। यशस्वी और कर्तव्यदक्ष व्यापारियों, पेशेवरों, विद्वानों और अन्वेषण आदि करनेवाले लोगोंमें कुछ ऐसे लोग भी मिलते हैं जिन्हें अपने कामके आगे और कुछ सूझता ही नहीं। एडिसन साहब केवल यही नहीं भूल गये थे कि आज ही मेरी स्त्री मेरे घरमें आई है, बल्कि वे अपने विवाहके दिन विवाह होते ही यह बात भी भूल गये थे कि आज मेरा विवाह हुआ है और मेरी नव-विवाहिता पत्नी घरमें आकर मेरी प्रतीक्षा कर रही है। बहुतसे कर्तव्यदक्ष और यशस्वी लोग इसी प्रकार अपने वीर्यकी रक्षा करते हैं।

निश्चय तो कर लिया, परन्तु केवल इतनेसे ही यह न समझ लेना चाहिए कि इस निश्चयका फल सामने ही रक्खा हुआ है। निश्चय करना तो बहुत सहज है, पर उसके अनुसार निरन्तर कार्य करना बहुत कठिन है। और जब तक आप अपने निश्चयपर अटल न रहेंगे, तबतक फलकी प्राप्ति कभी हो ही

नहीं सकती। इसी लिए हमें कोई ऐसा मार्ग देखना चाहिए जो इस निश्चयका पोषक हो।

सन्त तुकारामने अपने एक मराठी अभंगमें कहा है कि प्रयास करनेसे असाध्य भी साध्य हो जाता है। अभ्यास बहुत बड़ा कारण है।

६२. "यदि तोपका गोला यों ही उठाकर इंच भर मोटे लोहेके पत्तरपर फेंक दिया जाय, तो उसका उस कवचपर कुछ भी परिमाण न होगा। परन्तु यदि वही गोला अन्दर बारूद रक्खी हुई तोपके गर्भसे बाहर निकले, तो एक फुट मोटे लोहेके क़वचको भी सहजमें तोड़ या छेद डालेगा"। (—सामर्थ्य, समृद्धि और शान्ति*।)

यदि हम अपनी इच्छा, अपने हेतु और अपने दृढ संकल्पको इतना अधिक प्रबल बनाना चाहते हों कि उससे लक्ष्य-वेध हो सके, तो हमें अपनी मनोवृत्तिरूपी तोपके गर्भमें उस इच्छा और उस ध्येयके नित्य और उत्कट रूपसे होनेवाले चिन्तन, मानस-चित्र-लेखन और जपोच्चारकी बारूद भर देनी चाहिए।

हमें जो कुछ काम करना हो, उसके सम्बन्धमें एक बार अपना मत निश्चित कर लेनेके उपरान्त उस साध्यका निरन्तर चिन्तन करते रहना चाहिए; साधनका सदैव मनन करते रहना चाहिए; अपने साध्य और उसके महत्त्व तथा साधन और उसकी आवश्यकता तथा महत्त्व अपने चंचल और अशान्त मनको बराबर बतलाते रहना चाहिए; अपना समस्त आचरण यह मानकर करना चाहिए कि वह ध्येय हमारे लिए साध्य हो गया है, और साध्यके लिए अनुकूल होनेवाले प्रत्येक साधन, प्रत्येक अवसर और प्रत्येक कल्पनाका, सब प्रकारके आलस्यका परित्याग करके, उपयोग करना चाहिए। जो कुछ हमें इष्ट हो, उसका अपने मनपर निरन्तर संस्कार करते रहना चाहिए। जिस प्रकार किसी मनुष्यको कामके वशमें होनेपर जल, स्थल, काष्ठ और पाषाणमें सभी जगह स्त्री ही स्त्री दिखाई पड़ने लगती है, उसी प्रकार मनुष्यको जल, स्थल, काष्ठ और पाषाणमें सभी जगह अपना इष्ट साध्य और उसके साधन दिखलाई पड़ने चाहिए। विचारोंके द्वारा हमारे मनपर उस सूचनाका प्रतिबिम्ब पड़ना

* अधिक बातें जाननेके लिए "सामर्थ्य, समृद्धि और शान्ति" और "मानसोपचार" नामक पुस्तकें देखनी चाहिए। सामर्थ्य, समृद्धि और शान्तिका हिन्दी अनुवाद भी हो गया है, जो हमारे यहाँसे मिलता है। —प्रकाशक।

चाहिए, उस साध्यके अनुकूल अध्ययन और संगति आदि मार्गोंसे बाह्य सवेदनोंसे हमारे मनपर उसका पूरा पूरा प्रभाव पढ़ना चाहिए; और हमारा मन उनसे ओत-प्रोत हो जाना चाहिए। इस प्रकार इष्ट साध्यके अनुकूल अन्तःसंवेदना और बाह्य संवेदनाकी सहायतासे मनको अपने वशमें करना बहुत सहज हो जाता है। और यही अभ्यास योग है।

भाव सरीखा मिले न भाई, चित्त सरीखा चेला।
ज्ञान सरीखा गुरू मिले ना, गोरख फिरे अकेला॥

६३. यों मन चाहे कैसा ही क्यों न हो, परन्तु फिर भी यदि उसे दो चार युक्ति-संगत बातें बतलाई जायें, तो यह बात नहीं है कि वह उन्हें बिलकुल ही न सुनेगा। चित्तके बराबर और कोई चेला नहीं मिल सकता। हाँ, उसे मार्ग दिखलानेवाले ज्ञानी गुरुकी आवश्यकता होती है। वह गुरु समझदार और बुद्धिमान होना चाहिए और मनोनिग्रहके राजमार्गसे परिचित होना चाहिए।

मनको ठीक करनेका राजमार्ग केवल यही है कि आत्म-कथन, स्वयंसूचन-ग्रहण, अन्त.संवेदना और बाह्य संवेदनाके द्वारा मनपर चारों ओरसे इष्ट संस्कार करते रहना चाहिए।

ज्यों ही मनमें काम-वासना उत्पन्न हो, त्यों ही मनको अच्छी तरह यह समझाने लगना चाहिए कि काम-वासनाका परिणाम कितना बुरा और अनिष्टकारक होता है और उसे युक्तिपूर्वक अच्छी तरह यह बतलानेका प्रयत्न करना चाहिए कि वीर्य-संजीवनका कितना नितान्त सुन्दर महत्त्व होता है। काम-वासनाके आगे बलि पड़ते ही उसका अपने ऊपर जो दुष्परिणाम होता है, वह उसे बहुत अच्छी तरह बतलाना चाहिए और बार बार उससे यह कहना चाहिए कि अब फिर तुम वही उपदेश देने लगे ? बस माफ करो। आयुष्यका नाश मत करो।

जिस समय मनमें काम-वासना प्रत्यक्षरूपसे स्फुरित न होती हो, उस समय अपने मनपर उत्तमोत्तम ग्रन्थोंके अध्ययन, मनन, संगति और भाषण आदि मार्गोंसे यह संस्कार बैठानेका पूरा पूरा प्रयत्न करना चाहिए।

रातको सोते समय और सवेरे सोकर उठनेके समय युक्तियोंका विचार करते हुए मनोनिग्रह करनेका बहुत दृढ़ निश्चय करना चाहिए। सारांश यह

कि मनको अपना मित्र या शिष्य समझकर उसपर अपना इष्ट संस्कार करनेका प्रयत्न करना चाहिए और ऐसा उद्योग करना चाहिए कि मन इस इष्ट वातावरणमें बढ़े।

कामातुरोंकी ही भाँति परन्तु काम-वासनाके बदले काम-निवृत्तिके उदात्त विचार और तत्त्वोंका श्रवण, मनन और निदिध्यासन करते रहना चाहिए।

इसके लिए और सब काम-काज छोड़ देनेकी आवश्यकता नहीं है। जिस समय और कोई काम न हो और मन यों ही निकम्मा होनेकी दशामें इधर उधर भटकता हो, उस समय केवल इसी बातका उद्योग करते रहना चाहिए।

६४. जिस प्रकार पास-पड़ोस या गाँवमें किसी भारी दुष्टकी दुष्टतासे दुःखी होकर कोई आदमी वह पड़ोस या गाँव छोड़ देता है, उसी प्रकार विषय-वासनाके अनुकूल आचार-विचार, वासना और परिस्थितिका पूर्ण रूपसे परित्याग कर देना चाहिए। आप कह सकते हैं कि शारीरिक ग्राम-त्याग तो हो सकता है, पर मानसिक ग्राम-त्याग किस प्रकार किया जा सकता है? इसका उत्तर यह है कि मानसिक ग्राम-त्याग करनेके लिए विचारोंकी प्रवृत्ति बदल देनी चाहिए और नैतिक वातावरण भी बदल देना चाहिए।

सूक्ष्म आत्म-निरीक्षण करनेसे जिस प्रकारके अध्ययन, जिन जिन व्यक्तियोंके दर्शन किंवा संगति, जिन जिन प्रकारके चित्रों, एकान्त और दृश्यों आदिके कारण मनमें अनिष्ट विचार उठते हों और उन्हें उत्तेजना मिलती हो, उन सबसे प्रयत्नपूर्वक अलग हो जाना चाहिए। इस उपायसे नैतिक वातावरण ही बदल जायगा। और उपयुक्त आहार-विहार, व्यायाम, अध्ययन, मनन और शारीरिक तथा मानसिक इष्ट परिश्रम आदिके द्वारा विचारोंकी प्रवृत्ति बदल जायगी। इस प्रकार अन्दर और बाहर काम-वासनाके प्रतिकूल परिस्थितिका निर्माण करके मनमें विषय-वासनाका संचार बन्द किया जा सकता है। *

---

* शत्रु समझकर मनको मारो।
मित्र मानकर उसे सुधारो॥
यदि दोनोंसे सधे न अर्थ।
करो उपेक्षा, लड़ो न व्यर्थ॥—एकनाथ

बहुतसे लोगोंकी विचार-प्रणाली बहुत ही विलक्षण हुआ करती है। वे कहा करते हैं कि विषयोंसे अलिप्त रहकर नीतिमत्ताकी शेखी हाँकनेका क्या अर्थ है? तीव्र वेगसे बहती और गरजती हुई नदीको कूदकर पार करनेमें ही सच्चा पुरुषार्थ है। यदि कोई पुल परसे चलकर उसके पार हो जाय, तो इसमें क्या पुरुषार्थ है? इसमें सन्देह नहीं कि यह विचार-प्रणाली वास्तवमें पुरुषोचित है। परन्तु ऐसे लोगोंके आक्षेपोंका यह उत्तर है कि विषय-वासनामें पड़े रहकर, चारों ओर फैले हुए मोह-पाशके मध्यमें और सदा अपने मन.क्षेत्रमें विषय-वासनाकी कल्पनाओंका आह्वान करके उनका मुकावला करनेमें मरदानगी जरूर है; परन्तु उसमें यश कहाँ तक मिल सकता है? यदि जोखिममें पड़ना मर्दानगीका काम है, तो उस जोखिमको टालना चतुराईका काम है। यह जीवन मरनेके लिए नहीं, वल्कि जीवित रहनेके लिए है; इसलिए ऐसे मार्गमें नहीं जाना चाहिए जिसमें अपयश मिलनेकी बहुत अधिक सम्भावना या निश्चय हो। वल्कि इसके वदलेमें कोई ऐसा दूसरा सुरक्षित मार्ग ग्रहण करना चाहिए, जो मर्दानगीका हो, नामर्दीका न हो।

६५. जो आदमी डूबता या पतित होता हो, उसका पैर वरावर किस प्रकार नीचे ही नीचे पड़ता है, यह यदि देखना हो, तो शरीर और मन दोनोंकी परस्पर पोषक क्रियाओंसे देखा जा सकता है। शारीरिक क्रियाओं और मानसिक क्रियाओंमें वहुत ही निकट सम्बन्ध है। ज्यों ही भूखे आदमीके मनमें अन्नका विचार आता है, त्यों ही उसके जठरमें पाचक रस उत्पन्न होने लगता है। ज्यों ही किसी स्त्रीको वच्चेका पालन पोषण करनेकी आवश्यकता होती है, त्यों ही उस स्त्रीके स्तनोंमें दूध उत्पन्न होने लगता है। ज्यों ही मनमें स्त्रियोंके सम्वन्धका कोई विषय या भाव आता है, त्यों ही कामेन्द्रियका स्फुरण होने लगता है और इस शारीरिक स्फुरणके साथ ही साथ मानसिक स्फुरण या विचार भी अधिक प्रवल होने लगते हैं। प्रवल वासनाएँ इन्द्रियोंको और भी अधिक क्षुब्ध करती हैं; और तव क्षुब्ध इन्द्रियाँ उन वासनाओंको और भी अधिक प्रवल करती हैं। इसीलिए वैषयिक विचारोंको मनमें जरासा स्थान देना भी मानों आगके साथ खेलवाड़ करना है।

यदि आप अपना अधःपात रोकना चाहते हों, यदि आप यह चाहते हों कि आगसे आपकी उँगली न जले, तो आप इस प्रकारकी वासनाओंको मनमें जरा भी स्थान न दें।

लोग कहा करते हैं कि जहाँ साँप दिखाई पड़े, वहीं उसे कुचल डालना चाहिए। इसी प्रकार ज्यो ही मनमें काम-वासना उत्पन्न हो, त्यों ही उसे वहीं कुचल डालना या दवा देना चाहिए। ऐसे अवसरपर कुछ भी दया-माया करनेका काम नहीं है। जहाँ मनमें यह वात आई कि चलो, एक वार यह वासना पूरी कर ली जाय, वहाँ समझ लेना चाहिए कि सर्वस्व नष्ट हो गया। जहाँ आपने यह सोचा कि अधिक नहीं, केवल एक वार हम यह आनन्द ले लें, वहाँ समझ लीजिएगा कि सारे संसारका आनन्द नष्ट हो गया।

मानसशास्त्र या मनोविज्ञानका यह नियम है कि जिस विचारकी मनमें वार वार आवृत्ति होती है, उसका मार्ग वरावर सुलभ होता जाता है। जिस प्रकार कोई पैदलका रास्ता प्रत्येक प्रवाससे अधिकाधिक स्पष्ट, स्वाभाविक और राजमार्गके समान होता जाता है, उसी प्रकार जव किसी विचारपर वार वार जोर पड़ता है और उसकी पुनरावृत्ति होने लगती है, तव वह अधिकाधिक स्पष्ट, स्वाभाविक और दुर्दमनीय होता जाता है।

मनोवृत्तिको वशमें रखना

एकसमये चोभयानवधारणम्। योगसूत्र अ० ४, सू० २०।

६६. मन एकमार्गी है। मनोविज्ञानका यह नियम है कि मनमें एक समयमें एक ही विचारका प्रवाह रहता है; एक ही समयमें दो भिन्न भावनाओंका मनमें वना रहना असम्भव है।

मनमें एक समय केवल एक ही विचारका प्रवाह हो सकता है। इसीलिए जव मनमें यह अनिष्ट प्रवाह होने लगता हो, उसी समय एक दूसरा अच्छा विचार मनमें लाकर उस अनिष्ट विचारको धक्का दिया जा सकता है; और इससे मन उस अनिष्ट विचारसे वच जाता है और उसमें दूसरे इष्ट विचारका प्रवाह होने लगता है।

यदि आदमीकी समझमें यह वात आ जाय कि यह धक्का कैसे और किस प्रकार दिया जा सकता है, तो मनमें इष्ट विचार उत्पन्न करनेका कार्य बहुत सुगम हो जाता है।

ते प्रतिप्रसवहेया॰ सूक्ष्माः। योगसूत्र, अ० २, सू० १०।

मनोविकार वास्तवमें एक सूक्ष्म संस्कार किंवा स्पन्दन या कम्प हैं। यदि मनमें एक सूक्ष्म संस्कारका आविर्भाव हो, तो उसी समय ऐसे संस्कारोंका

आविर्भाव करना चाहिए जो उस पहले संस्कारके विरुद्ध हों। बस इतनेसे ही पूर्व संस्कारका नियमन हो जायगा।

सेतूंस्तर दुस्तरान्। अक्रोधेन क्रोधं सत्येनानृतं।

उपनिषदोंमें इस मार्गका इसी प्रकार स्पष्टीकरण किया गया है। यदि द्वेष भावनाको रोकनेके लिए प्रीति, क्रोध भावको रोकनेके लिए शान्ति और दोषपूर्ण दृष्टिको रोकनेके लिए गुणग्राहकताका उपयोग किया जाय, तो पहलेवाली बुरी भावना आपसे आप रुक जाती है। यदि मनमें किसी प्रकारके अनिष्ट विचारका प्रवाह आरम्भ हो, तो उसे रोकनेके लिए उसके बिलकुल विपरीत गुण और धर्मवाली भावना मनमें उत्पन्न करनी चाहिए। इससे विचारका प्रवाह आपसे आप बदल जायगा और बुरे मार्गसे हटकर अच्छे मार्गमें आ जायगा।

न जातु जातः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥

६७. काम-वासना मनुष्यके स्वभावमें सार्वत्रिक और प्रबल है, परन्तु कुछ विशिष्ट प्रकृतिके लोगोंमें यह वासना बहुत ही प्रबल हुआ करती है। ऐसे लोगोंके लिए अपने शरीरमें वीर्य संगृहीत करना, अधिक समय तक वीर्यको धारण किये रहना, प्रायः असम्भव ही होता है।

यह कोई आवश्यक बात नहीं है कि जो लोग देखनेमें बहुत बलवान्, हृष्ट पुष्ट और मरदाने जान पड़ते हों, वही सम्भोगके लिए अधिक उत्सुक रहा करते हों। इसके विपरीत प्रायः यह देखनेमें आता है कि ज्यों ज्यों शारीरिक तथा मानसिक बलमें कमी होती जाती है, त्यों त्यों काम-वासना बढ़ती जाती है। अधिक स्त्री-प्रसंग तथा दूसरे कारणोसे जो लोग अधिक कामी हो जाते हैं और इसी लिए जिनका मन बहुत दुर्बल हो जाता है, उनमें यह प्रवृत्ति और भी अधिक देखनेमें आती है। जो मनुष्य बलवान् होता है, वही अधिक मनोनिग्रह भी कर सकता है।

हमें यह बात प्रायः मान लेनी पड़ेगी कि पूर्व संस्कार और पुरानी कोष्ठबद्धता तथा कुछ दूसरे रोगोंमें और कुछ विशिष्ट प्रकृतिवाले लोगोंमें स्त्री-सम्भोगकी इच्छाका बहुत और अनिवार्य होना एक प्रकारसे स्वाभाविक ही है। अब हम इस बातका विचार करेंगे कि किन कारणोंसे इस स्वाभाविक प्रवृत्तिको

उत्तेजन मिलता है और यह प्रवृत्ति बढ़ती है; और उन्हीं कारणोंके अनुरोधसे उन्हें दूर करनेका कौन सा मार्ग है।

काम-वासनाके बढ़नेका पहला कारण इस वासनाकी तृप्ति ही है। जब मनमें एक बार यह वासना उत्पन्न होती है, तब मनुष्य उसकी तृप्ति कर लेता है। ऊपर मनोविज्ञानका जो नियम बतलाया गया है, उसके अनुसार इसी तृप्तिके कारण वह वासना और भी प्रबल हो जाती है, और तब फिर उसकी तृप्ति होती है। इस प्रकार इसपर सूद दर सूद बराबर चढ़ता चलता है और वासनाकी इतनी अधिक वृद्धि हो जाती है कि बेचारा ऋणी अपना सर्वनाश कर लेता है। यह आत्म-नाशका राजमार्ग है।

अभ्यास या आदत

६८. एक कहावत है कि—"जाकर जौन स्वभाव छुटै नहिं जीसों।" अर्थात् जिसे जो आदत पड़ जाती है, वह फिर जन्मभर नहीं छूटती। अब प्रश्न यह होता है कि यह आदत है क्या चीज़? जिस मार्गपर एक बार मनुष्य चल चुकता है, उसी मार्गपर बार बार चलनेकी मनसे जो प्रवृत्ति होती है, उसीको आदत कहते हैं। मान लीजिए कि आप अपने गाँवसे किसी दूसरे गाँवको जानेके लिए निकले हैं। उस गाँवको जानेका जो सीधा बना हुआ मार्ग है, आप उसे छोडकर बीचमें ही किसी नये मार्गसे जाने लगते हैं। गाड़ीके बैल जबरदस्ती उसी मार्गसे चलते हैं जिस मार्गसे वे बराबर चलते रहे हैं, क्योंकि वे उसी मार्गके अभ्यस्त हैं। अब उस पुराने मार्गसे हटाकर नये मार्गमें लगानेके लिए उन्हें बहुत कुछ मारना पीटना पड़ता है। निर्जीव पदार्थों तकमें यह प्रवृत्ति देखनेमें आती है। एक बार किसी कागजको जिस तरह मोड़ दीजिए, वह फिर उसी तरहसे मुड़ना चाहता है।

चाहे अपनी इच्छासे हो या अनिच्छासे हो, या किसीके जबरदस्ती करनेके कारण हो, जब मनुष्य एक बार केवल पहला और एक ही प्याला पी लेता है, एक ही और पहली बार वीर्य-नाश कर लेता है, एक ही बार बीड़ी पी लेता है, तब मानसिक क्षेत्रमें उसकी एक अस्पष्ट छाप बैठ जाती है। फिर जब वह बराबर उसी ओर जाने लगता है, तो उसके लिए वह मार्ग कुछ और स्पष्ट हो जाता है और अन्तमें वह धीरे धीरे उस मार्गका इतना अभ्यस्त हो जाता है कि ज्यों ही उसके मनको किसी विशिष्ट पक्षसे

धक्का लगता है, त्यों ही उसका मन आपसे आप और वेधड़क होकर उसी मार्गपर चल पड़ता है।

विचारशक्ति जलके प्रवाहके समान है। जिस प्रकार किसी नहर या नालेमें पानीके निकासके लिए बीच वीचमें मार्ग या छोटी नालियाँ वनी हुई होती हैं, उसी प्रकार विचाररूपी प्रवाहमें भी आदत या अभ्यासरूपी निकासके मार्ग या छोटी नालियाँ वन जाती हैं। जहाँ कहीं किसी स्थानपर जरासा क्षोभ उत्पन्न करनेवाला कोई कारण होता है, वहीं वह प्रवाह अपने अत्यन्त समीपके अभ्यस्त मार्गमें चल पड़ता है। और जब वह एक वार उस मार्गमें चल पड़ता है, तब उसे रोकना वहुत ही कठिन हो जाता है। वह वलपूर्वक उसी मार्गसे प्रवाहित होने लगता है। इसी लिए लेखक, वक्ता, कवि अथवा और किसी विचारशील मनुष्यके लिए किसी विचारमें मग्न होना जरा कठिन होता है। परन्तु जब वह एक वार उस प्रवाहमें, उस लहरमें, चल पड़ता है और एक वार उस लहरमें पड़ जाता है, तब फिर उससे बाहर निकलना उसके लिए वहुत ही कठिन होता है। उससे अलग होनेका प्रयत्न करते ही उसकी जानपर आ वनती है। ×

इसी कारणसे किसी कार्यको सुलभ करनेके लिए अभ्यास वहुत अधिक आवश्यक होता है। इसी अभ्यासके द्वारा वहुतसे कठिन कार्य भी सुलभ हो जाते हैं। इस लाभके साथ साथ एक दूसरी हानि भी होती है। मनुष्य उस अभ्यासका दास, उस आदतका गुलाम वन जाता है। इसी लिए लोगोको उचित है कि वे अच्छे मार्गोंके अभ्यस्त हों, अपने आपमें अच्छी आदतें लगावें और वुरी आदतें दूर करें।

६९. जो लोग संजीवन व्रतका आचरण करना चाहते हों, अथवा जिनके हृदयमें उसके महत्त्वने स्थान कर लिया हो, उन्हें कभी ऐसे उपन्यास और नाटक आदि नहीं पढ़ने चाहिऍं जिनमें स्त्री-पुरुषोंके सम्बन्धकी वातें हो।

केवल उपयुक्त, उदात्त और धर्म, तत्वज्ञान आदि विषयोंके ग्रन्थोंका परिशीलन करना चाहिए। यद्यपि धर्म और ज्ञान विषयक ग्रन्थोंका अध्ययन, तत्कालीन उपायकी दृष्टिसे, कोई वहुत तीव्र औषध नहीं है, तो भी यह एक

× न वेषधारणं सिद्धिः साधनं न च तत्कथा।
क्रियैव साधनं सिद्धेः सत्यमेव न संशयः॥

ऐसा औपध अवश्य है जिसका सदा व्यवहार किया जा सकता है और जिससे धीरे धीरे सन्तोपजनक परिणाम हो सकता है। यह तो हम कह ही चुके हैं कि साधारणतः उपयुक्त और उदात्त ग्रन्थोंका अध्ययन करना चाहिए; परन्तु जिन लोगोंकी काम-वासना बहुत तीव्र हो, उन लोगोंको कुछ ग्रन्थोंके विशिष्ट भागोंका बराबर पाठ करना चाहिए; और जिस समय साधारण लोगोंकी काम-वासना प्रबल हो, उस समय उन लोगोंको भी ऐसा ही करना चाहिए। इसका अवश्य ही बहुत अच्छा परिणाम होगा।

उदाहरणके लिए जिस समय स्त्री-सम्भोगकी वासना प्रबल हो और इन्द्रिय-क्षोभ हो, उस समय गीताका भक्त यदि गीता खोलकर उसका कोई अध्याय पढ़ने लगे, रामभक्त हनुमानस्तोत्र या रामायणका पाठ करने लगे, तत्वप्रिय स्वामी विवेकानन्दका संन्यासयोग, भक्तियोग या इसी प्रकारका और कोई योग पढ़ने लगे, अथवा राम तीर्थके स्फूर्तिप्रद और मधुर व्याख्यान पढ़ने लगे अथवा सामर्थ्य, समृद्धि और शान्ति नामक पुस्तकका कोई प्रकरण पढ़ने लगे अथवा इसी प्रकारके और किसी ग्रन्थका अध्ययन आरम्भ कर दे, तो निश्चय ही उसकी काम-वासना कम हो जायगी।

यदि वासना बहुत ही प्रबल होती हुई जान पड़े, तो अप्रत्यक्ष और साम नीतिका उपयोग न करके दंड नीतिका उपयोग करना चाहिए। दासबोध हाथमें लेकर उसका वैराग्यविपयक भाग पढ़ने लगना चाहिए। बहुतसे पुराने सत्कवियोंके काव्यग्रन्थोंमें काम-वासनाका तीव्र निपेधकरनेवाले ऐसे अनेक सुन्दर भाग हैं कि चाहे कैसा ही कामी मनुष्य क्यों न हो, वह यदि ठीक इन्द्रिय-क्षोभके समय वह ग्रन्थ हाथमें लेकर उसका विशिष्ट भाग पढ़ना आरम्भ कर दे, तो उस पाठसे काम-वासना अवश्य ही दब जायगी। इसलिए प्रत्येक मनुष्यको उचित है कि वह अपनी पसन्दके इस प्रकारके ग्रन्थों और उनके कुछ विशिष्ट भागोंकी एक सूची या संग्रह तयार कर ले और समय आने पर उसका उपयोग करे।

संगति

असङ्गदोषेण सतां च मतिविभ्रमः।

७०. काम-वासनाको बढ़ाने अथवा घटानेके लिए संगति एक बहुत प्रबल है। कामी और नीच मनुष्योंकी सगतिसे मनोवृत्ति बराबर बिगड़ती ही

चली जाती है। फिर चाहे वह नीच विचारका मनुष्य कितना ही बड़ा विद्वान्, धनवान् या अधिकारसम्पन्न क्यों न हो। पान, सुपारी और सिगरेट आदिके शिष्ट और सौम्य व्यसनोंसे लेकर हस्तमैथुन और वेश्यागमन तकके अनेक नितान्त दुष्ट व्यसनोंको अनिष्ट संगतिके ही कारण उत्तेजना मिलती है। केवल इतना ही नहीं, वल्कि अनिष्ट संगतिसे ही मुख्यतः ये व्यसन आदमीको सदाके लिए ऐसे लग जाते हैं कि फिर उनसे जल्दी पीछा छूटना वहुत कठिन हो जाता है। इसके विपरीत इष्ट या अच्छी संगतिसे इन अनिष्ट व्यसनोंके छूटनेमें वहुत सहायता मिलती है।

जो लोग संजीवन व्रतको पसन्द करते हों, उन्हें कभी ऐसे मनुष्योंके साथ किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए, जो आचार, विचार अथवा शब्दोच्चारकी दृष्टिसे नीच हों। ऐसे मनुष्योंके साथ कभी वातचीत भी नहीं करनी चाहिए और कभी साधारण रूपसे भी उनका संग साथ नहीं करना चाहिए।

जिस समय काम-वासना प्रवल हो, उस समयके लिए तत्कालीन उपाय यही है कि सत्संगतिका उपयोग करना चाहिए। जिस समय मनमें कामका क्षोभ उत्पन्न होता हुआ जान पड़े और उससे छुटकारेका कोई और उपाय न दिखलाई दे, उस समय अपना स्थान छोड़कर अपने पूज्य और आदरणीय व्यक्तियोंके पास जा वैठना चाहिए अथवा उनसे वातचीत आरम्भ कर देनी चाहिए। उस समय किसी ऐसे वड़े शिक्षक, गुरु किंवा देवमूर्ति या मित्रके पास जा वैठना चाहिए जिसके प्रति मनमें आदर हो और जिसका हम कुछ अदव करते हों। इस प्रकार मन तुरन्त ही काम-वासनाकी ओरसे हटकर किसी और वातमें लग जायगा। उस समय यह वात कभी भूलनी नहीं चाहिए कि हम इस समय विषय-वासनाकी निवृत्तिके लिए ही जान-वूझकर इनकी संगतिमें आ वैठे हैं। यदि यह वात विस्मृत कर दी जायगी तो इष्ट कार्य विशेष रूपसे सिद्ध नहीं होगा। उलटे यदि वार वार इस मार्गका मूर्खतापूर्वक अवलम्बन किया जायगा, तो मनुष्य इतना निर्लज्ज वन जायगा कि आदरणीय लोगोंकी संगतिमें भी उसके मनमें कामका विकार वना ही रहेगा।

७१. इस काम-वासनाके पेटसे भिन्न भिन्न व्यसनोंके रूपमें अनेक सन्तानें उत्पन्न होती हैं।

जो लोहा यों ही पड़ा रहता है, उसपर मोरचा अवश्य लग जाता है, जो लकड़ी पड़ी रहती है, उसमें घुन अवश्य लग जाता है। इसी प्रकार जो मनुष्य आलसी होता है, उसके मनमें सदा निरर्थक, अनर्थकारक, अशुद्ध और नीच विचार उत्पन्न होते रहते हैं।

जो शरीरधारी है, उसे किसी न किसी प्रकार शारीरिक परिश्रम अवश्य करना चाहिए। परन्तु देखनेमें यह आता है कि दिनपर दिन श्रम-विभागके तत्वका अतिरेक होता जाता है; और शिक्षित तथा उच्च कहलानेवाले वर्गोंमें लोग शारीरिक परिश्रमको केवल नापसन्द ही नहीं करते, वरन् शारीरिक परिश्रम करते हुए उन्हें लज्जा जान पड़ती है। अधिक दूर तक पैदल चलना, बोझ उठाना, बाग या खेतमें कुछ काम करना, बढ़ई आदिका काम करना या इसी प्रकारके शारीरिक परिश्रमके और काम करना आजकलके शिक्षित लोग अशिष्टता समझते हैं। भरपूर शारीरिक परिश्रम न करनेके कारण शारीरिक शक्तियोंका जैसा चाहिए, वैसा विकास नहीं होने पाता, और आजकल केवल मानसिक शिक्षापर जो बहुत अधिक जोर दिया जाता है, उसके कारण मनोवृत्ति अनावश्यक रूपसे क्षोभक और संवेदनाक्षम बन जाती है। इस कारण शारीरिक दुर्बलताके साथ ही साथ एक प्रकारकी मानसिक दुर्बलता भी बढ़ती जाती है। लोगोंका अपने मन-पर अधिकार कम होता जाता है; और जिस शक्तिका उपयोग शारीरिक परिश्रम करनेमें होना चाहिए, वह शक्ति मनोवृत्तिके द्वारसे व्यक्त होती है जिससे मनोवृत्तिमें और भी अधिक अनिष्ट क्षोभ उत्पन्न होता है।

मनुष्य सुशिक्षित हों अथवा अशिक्षित, शारीरिक परिश्रम न करनेवाले लोगोंकी अपेक्षा वे लोग काम-वासनासे कम पीड़ित होते हैं जो अधिक शारीरिक परिश्रम करते हैं। शारीरिक परिश्रम करनेवालेके लिए वीर्य धारण करना अधिक सुलभ होता है। साथ ही शारीरिक परिश्रम करनेसे शरीरके अंगोंका अच्छा व्यायाम हो जाता है और उन्हें वीर्य-संजीवनके द्वारा भरपूर पोषक शक्ति मिलती है जिससे शरीरका सामर्थ्य बढ़ता जाता है और विषयासक्ति कम होती जाती है।

क्रियायुक्तस्य सिद्धिः स्यादक्रियस्य कथं भवेत्।
न शास्त्रमात्रपाठेन योगसिद्धिः प्रजायते॥

जो लोग संजीवन व्रतको पसन्द करते हों, उन्हें किसी न किसी प्रकारसे अवश्य नित्य पूरा पूरा शारीरिक परिश्रम करना चाहिए।

तत्काल गुण करनेवाला औषध-व्यायाम

७२. वातका प्रकोप आरम्भ होते होते ही हेमगर्भकी मात्रा या पित्तका प्रकोप होने पर सूत-शेखरकी मात्रा देनी चाहिए और मनमें विषय-वासना उत्पन्न होनेपर व्यायाम करना चाहिए। इन औषधोंका गुण तत्काल ही दिखाई पड़ता है और इनसे ये विकार उसी समय दूर हो जाते हैं।

शरीर-धारणके लिए व्यायाम बहुत ही आवश्यक है, अब वह व्यायाम चाहे कृत्रिम हो और चाहे स्वाभाविक हो। जो लोग भरपूर शारीरिक परिश्रम करते हों, उन्हें व्यायाम करनेकी विशेष आवश्यकता नहीं होती। यदि बहुत हो, तो ऐसे आदमियोंको थोड़ासा ऐसा व्यायाम कर लेना चाहिए जिससे शरीरके उन अंगोपर कुछ जोर पहुँच जाय, जिन अंगोंका व्यायाम शारीरिक परिश्रममें न हुआ हो। परन्तु जो लोग लज्जाके कारण, अवकाश न मिलनेके कारण, अथवा किसी और कारणसे शारीरिक परिश्रम न करते हों, उन लोगोंके लिए सर्वांगीण व्यायाम भी उतना ही आवश्यक है जितना आवश्यक खाना और पीना है। जब शरीरके सभी अवयवों, स्नायुओं और सन्धियो आदिका तनाव, गति, भार और मर्दन आदिके द्वारा व्यायाम होता रहेगा, तभी शरीरमें ठीक तरहसे रक्तका संचार होगा और शरीरमेंके अनिष्ट द्रव्य सफाईके साथ धुलकर बाहर निकल जायँगे। शरीरका जो अंश छीज गया होगा, उसकी फिरसे यथेष्ट पूर्ति हो जायगी; मस्तिष्कमें तेजी रहेगी, पचनेन्द्रिय बलवती रहेगी, और इन सब बातोंके कारण मनोवृत्ति निर्मल, सतेज और बलवान् रहेगी।

जो लोग सजीवन व्रतका आचरण करते हों, उन्हें नित्य आवश्यक रूपसे और नियमपूर्वक व्यायाम करना चाहिए। खुली हवा या खुले कमरेमें थोड़ा-सा शारीरिक परिश्रम करके खुली हवामें कुछ खेल आदि खेलने चाहिएँ और व्यायाम करना चाहिए। इन सब क्रियाओंसे वीर्य स्वभावतः शरीरके पोषणके लिए विशेष परिमाणमें खिंच जाता है और मनोनिग्रह सुलभ हो जाता है।

जिस समय स्त्रीके साथ सम्भोग करनेकी बहुत प्रबल इच्छा हो, उसी समय तुरन्त उठकर अपनी शक्तिके अनुसार परन्तु ऐसा व्यायाम आरम्भ

करना चाहिए जिसमें अधिक परिश्रम पड़े। डंड करना चाहिए, मुद्गर फेरना चाहिए, डंबेल हिलाना चाहिए, बैठक करनी चाहिए, दौड़ लगानी चाहिए अथवा इसी प्रकारका कोई और ऐसा व्यायाम करना चाहिए जो अपनेको अच्छा लगता हो और अपनेसे हो सकता हो। यह उपाय बहुत ही सुलभ है और इससे निश्चित रूपसे लाभ होता है। वीर्य-संजीवन व्रतका आचरण करनेवाले लोगोंका मार्ग सुलभ करनेके जो उपाय हैं, उनमेंसे कुछ नित्य और कुछ नैमित्तिक स्वरूपके हैं। कुछ तो ऐसे हैं जो तत्काल ही अपनी उपयोगिता दिखलाते हैं; और कुछ ऐसे हैं जो अन्तमें चलकर स्थायी रूपसे अपना उत्तम परिणाम दिखलाते हैं। व्यायाम इनमेंसे तात्कालिक और नैमित्तिक उपाय है; परन्तु साथ ही उसका स्थायी महत्त्व भी है।

७३. मन उन बच्चोंकी अपेक्षा भी कहीं सयाना है जो 'र' का नाम सुनते ही चटपट निर्भ्रान्त रूपसे उसका अर्थ 'रोटी' समझ लेते हैं। इसी लिए उसके साथ व्यवहार करते समय बहुत सावधानी रखनी चाहिए।

अश्लील अथवा उत्तेजक चित्र चाहे बहुत ही उत्तम हेतुसे और कोई श्रेष्ठ प्रसंग दिखलानेके लिए ही क्यों न बनाये जायँ, परन्तु वे चित्र भी बिगड़ी हुई मनोवृत्तिवाले लोगोंके लिए मनको बुरे मार्गमें ले जानेवाले और उनकी विषय-वासनाको उत्तेजन देनेवाले होते हैं। इसी लिए पूजनीया बड़ी स्त्रियों किंवा सरस्वती, लक्ष्मी आदिके अति शिष्ट और विशेष आदरणीय चित्रोंके सिवा अन्य स्त्रियोंके सुन्दर या विलासी चित्र अथवा ऐसे चित्र अपने पास नहीं रखने चाहिएँ, जिनमें कम या अधिक अश्लीलताका भाव हो।

न तो कभी किसीको कोई अश्लील गाली देनी चाहिए और न अश्लील परिहास या विनोद करना चाहिए। साथ ही जो लोग कामी हों, उन्हें कभी अकेले रहनेकी दशामें किसी स्त्रीका प्रेमालाप या मामूली बातचीत भी केवल इसलिए नहीं सुननी चाहिए कि वह बातचीत उन्हें अच्छी लगती है। यदि कभी स्त्रियोंके गीत सुननेका भी अवसर आवे, तो वह भी केवल सार्वजनिक स्थानोंमें और दो चार सुशील मनुष्योंके साथ बैठकर ही सुनने चाहिएँ।

किसी मनुष्यको अस्पृश्य वर्गमें रखनेकी अपेक्षा कहीं अधिक उत्तम यह है कि गुह्येन्द्रिय, स्त्रियोंके कपड़ों और वस्तुओं और विचारोंको ही अस्पृश्य

वर्गमें रक्खा जाय । इसका कारण यही है कि इन्हीं सब चीजोंके स्पर्शसे मनको अनिष्ट सूचनाएँ मिलती हैं और इन्द्रियाँ प्रक्षुब्ध होने लगती हैं ।

जो लोग यह समझते हों कि संजीवन व्रत बहुत ही उपयोगी है, उन्हें केवल अपनी पत्नीको छोड़कर और किसी स्त्रीकी ओर आसक्तिकी दृष्टिसे अथवा यों ही नहीं देखना चाहिए, न सुन्दर स्त्रियोंके चित्र ही, चाहे वे उत्तेजक हों और चाहे न हो, देखने चाहिएँ, कभी अश्लील शब्दोंका व्यवहार नहीं करना चाहिए, स्त्रियोंके प्रेमालाप या केवल शब्द या पराई स्त्रियोंकी सब वस्तुओंको बिलकुल त्याज्य और वर्जित समझना चाहिए। जिस समय काम-वासना थोड़ी बहुत जागृत हुई हो, उस समय जान-बूझकर जब इस प्रकारकी वस्तुओं या बातोंके साथ सम्पर्क किया जाता है, तब मानों आगमें और भी तेल डाला जाता है और मन और भी अधिक क्षुब्ध होता है ।

मनोवृत्ति रूक्ष और कठोर न हो जाय, बल्कि उसमें मार्दव, सौन्दर्यकी अनुभूति, स्नेहार्द्रता और प्रेम भाव आदि गुण आने चाहिएँ । परन्तु इन बातोंके लिए संसारमें केवल स्त्रियाँ ही एक मात्र साधन नहीं हैं । और भी अनेक ऐसे साधन हैं, जिनकी सहायतासे ये सब बातें प्राप्त की जा सकती हैं ।

खान-पान

जब तक शरीरका स्वास्थ्य न बिगड़े, तब तक मनका स्वास्थ्य बिगड़ना सम्भव नहीं है । इसी लिए जब मनमें आलस्य, उद्विग्नता अथवा दुष्टतापूर्ण विचार उत्पन्न हों, तब सबसे पहले अपने पेटकी अवस्थापर ध्यान देना चाहिए ।*

—स्वामी रामतीर्थ ।

७४. मलबद्धताके कारण जठरमें उष्णता उत्पन्न होती है और उसके कारण अन्दरकी वीर्येन्द्रियपर भार पड़ता है । इस उष्णता और दबावके कारण कामेन्द्रिय जल्दी क्षुब्ध होती है । इसी लिए जो लोग अपने वीर्यका संरक्षण करना चाहते हों, उन्हें कभी ऐसा भोजन न करना चाहिए जिससे मलबद्धता हो । ऐसे लोगोंको, जहां तक हो सके, इस बातका प्रयत्न करना चाहिए कि मलबद्धता न रहने पावे । अधिक भोजन करनेसे शारीरिक और मानसिक दुर्ब-

* आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः ।

लता उत्पन्न होती है और दुर्बलता सदा वीर्य-संरक्षणके प्रतिकूल पड़ती है। इसी प्रकार यदि रातको सोनेसे पहले अधिक भोजन कर लिया जाय, तो वीर्य-हानिकी विशेष सम्भावना रहती है। मांस, मिठाई या चीनीकी बनी हुई और कोई चीज, मूँगफली और गरी आदि उष्णवीर्य पदार्थ, चाय और कहवा आदि उत्तेजक तथा मादक पेय पदार्थ और सोडा वाटर आदि क्षारयुक्त पेय पदार्थ भिन्न भिन्न कारणोंसे कामेच्छा प्रबल करते हैं। इन सब चीजोंके सेवनसे वीर्य पतला पड़ जाता है और वीर्य-हानिको उत्तेजना मिलती है। इसी लिए यदि कभी इन पदार्थोंका सेवन किया जाय, तो अधिक मात्रामें नहीं करना चाहिए। और विशेषतः रातके समय तो इन पदार्थोंका कभी सेवन नहीं करना चाहिए।

मधुर और खट्टे फल, मठा, साग और पाचक तरकारियाँ, सब प्रकारके शीतवीर्य और समधातु पदार्थ और दूध, घी आदि ऐसे पौष्टिक पदार्थ जो उत्तेजक न हों, अधिक मात्रामें खानेमें कोई हानि नहीं है। जहाँ तक हो सके, शहद अधिक मात्रामें खाना चाहिए। कारण यह है कि शहद बहुत अच्छा अग्निदीपक, किंचित् सारक और त्रिदोषनाशक है। रोटी या पूरी आदिके साथ शहद खाना बहुत अच्छा है।

पानी खूब पीना चाहिए; परन्तु रातको सोनेके समय और भोजन करनेके समय अधिक पानी नहीं पीना चाहिए। साफ पाखाना लानेके लिए भोजनसे आध घंटे पहले गरम पानी पीना चाहिए। जो लोग हस्तमैथुन करते हैं, जिन्हें स्वप्न-दोष होता है, और जिन्हें सम्भोगकी इच्छा बहुत प्रबल होती हो, उनके लिए उष:पान करना बहुत आवश्यक है। प्रायः भोजन ठीक तरहसे न पचने और ज्ञानतन्तुओंमें क्षोभ होनेके कारण वीर्य-हानि होती है। इनके अतितिरक्त और भी कई ऐसी व्याधियाँ हैं जिनके कारण वीर्य-हानि होती है। इन सब व्याधियोंको दूर करनेके लिए उषःपान बहुत ही अच्छा उपाय है। बहुत तड़के उठकर नाकके दोनों नथनोंके रास्ते दोसे चार तोले तक पानी पीना चाहिए।

एक और उपाय—शीत-स्नान

७५. बहुतसे लोगोंकी यह आदत होती है कि “हर गंगे! भागीरथी!” आदि कहते हुए जल्दी किसी तरह दो लोटे पानी शरीरपर डाल लेते हैं

और समझ लेते हैं कि स्नान हो गया। परन्तु इस प्रकारका स्नान ठीक नहीं है। आजकल लोगोंकी जैसी रहन-सहन है, उसको देखते हुए वीर्यकी रक्षा और मनोनिग्रहके लिए आरोग्यकी ही भाँति स्नान करना भी बहुत आवश्यक है।

वीर्य-संरक्षणकी दृष्टिसे शीत-स्नान बहुत ही उत्तम है। शीतल जलसे स्नान करनेसे मस्तिष्क और वीर्य दोनो शान्त रहते हैं; और इसी लिए उन दोनोंकी क्षुब्ध होनेकी प्रवृत्ति कम हो जाती है। उष्ण पदार्थों और गरम ओढ़नों तथा बिछौनों आदिसे इनके क्षुब्ध होनेकी प्रवृत्ति बढ़ती है।

जिन लोगोंके शरीरमें बहुत उष्णता होती है, उनका वीर्य बहुत जल्दी क्षुब्ध होता है। सब प्रकारके वीर्य-दोषों, दुर्बलताओं और उष्णताके शरीरस्थ दूसरे विकारोंको दूर करनेके लिए कटि-स्नान एक बहुत अच्छा उपाय है। जिस बरतनमें कमरसे लेकर जाँघों तकका भाग अच्छी तरह डुबाकर आदमी बैठ सकता हो, उस बरतनमें साधारण ठंढा पानी भर देना चाहिए और उस पानीमें नंगे होकर बैठ जाना चाहिए। कमरसे नीचेका सब भाग खूब अच्छी तरह मलना चाहिए। इसके उपरान्त इन्द्रियके ऊपरकी त्वचा हटाकर उसका अगला भाग ठंढे पानीसे बहुत सावधानीके साथ अच्छी तरह धोकर बिलकुल साफ कर डालना चाहिए। इसके उपरान्त यदि आवश्यकता हो, तो उस बरतनका पानी फिर एक बार बदल देना चाहिए और कुछ देर तक उस दूसरे बदले हुए पानीमें या उसी प्रकारके भरे हुए पानीके दूसरे बरतनमें बैठना चाहिए। इस प्रकार पाँचसे दस मिनट तक स्नान करना चाहिए। जिन लोगोंकी काम-वासना बहुत तीव्र हो, उन्हें रातको सोनेसे पहले ठंढे पानीसे पूरा या केवल कमर तक स्नान करना चाहिए। यदि स्नान न हो सके, तो कमसे कम हाथ, पैर और गरदनका पिछला भाग ही ठंढे पानीसे खूब अच्छी तरह धो डालना चाहिए। यह काम नियमित रूपसे और अवश्य होना चाहिए।

मूत्रोत्सर्ग करनेके उपरान्त मूत्रेन्द्रियको ठंढे पानीसे धोनेकी प्रथा स्वच्छताकी दृष्टिसे तो अच्छी और इष्ट है ही, परन्तु वीर्य-संरक्षणकी दृष्टिसे भी बहुत उत्तम है। दिनमें कमसे कम दो तीन बार इन्द्रियके आगेकी त्वचा हटाकर उसपर कुछ देर तक ठंढे पानीकी धार अवश्य देनी चाहिए। जो

लोग गरम पानीसे स्नान करते हों, उनके लिए तो मूत्रेन्द्रियका शीत-स्नान बहुत ही आवश्यक है।

जिस समय मनमें काम-वासना उत्पन्न हो, उस समय तुरन्त ठंढे पानीसे स्नान कर लेना उसके शमनका एक बहुत अच्छा उपाय है।

कौटुम्बिक जीवन और संजीवन व्रत

७६. पुरानी हिन्दू कौटुम्बिक पद्धति ऐसी है कि उसमें सामान्यतः सब लोग मिलकर एक साथ रहते हैं और प्रायः गाँवों आदिमें ही निवास करते हैं। परन्तु आजकलकी कुटुम्ब-पद्धति कुछ ऐसी है कि उसमें लोग प्रायः विभक्त होकर या अलग अलग रहते हैं और अधिकतर नगरोंमें रहते हैं। अब हम यह बतलाना चाहते हैं कि इस अन्तरका स्त्री और पुरुषके वैषयिक सम्बन्धपर क्या और कैसा प्रभाव पड़ता है।

पुरानी प्रथामें लोग एक साथ रहते थे; इस प्रकार साथ रहनेवाले मनुष्योंकी संख्या प्रायः अधिक होती थी; साथ ही लोगोंमें विनय और शालीनताका भाव भी बहुत अधिक हुआ करता था; और लोग अपने बड़ोंका बहुत आदर-सम्मान करते थे, इसी लिए उस पद्धतिमें स्त्रियों और पुरुषोंको ऐसा समय बहुत ही कम मिलता था कि वे स्वच्छन्दतापूर्वक एकान्तमें रह सकें या कमसे कम ऐसे स्थानमें रह सकें जहाँ किसी बड़े बूढ़ेके देख लेने और उसके कारण मनमें संकोच उत्पन्न होनेकी सम्भावना होती थी। इसी लिए वे लोग वैषयिक भावनाओंके औपचारिक कार्य बहुत अधिक मनमाने ढंग और नये नये प्रकारसे नहीं कर सकते थे। इसके सिवा उन्हें अपनी पत्नीके साथ रहनेका जितना समय मिलता था, उतना ही बल्कि उससे भी कुछ अधिक समय अपने पिता माता और छोटे भाई बहनो आदिके साथ रहनेको भी मिलता था, जो उनके लिए थोड़ा बहुत आकर्षक हुआ करता था और उनका मन उसी सहवासमें बहला रहता था।

ऐसी परिस्थितिमें इस पद्धतिके कुटुम्बोंमें नवयुवकोंकी वृत्तिमें विषय-वासनाकी उत्कटता केवल कम ही नहीं होती है, बल्कि उसकी व्यापकता भी बहुत कम हो जाती है। नवयुवकोंको इतना अधिक अवकाश ही नहीं मिलता कि वे सदा अपनी पत्नीके साथ साथ लगे रहें और उनके मनमें सदा काम-विचार ही बने रहें। वहाँ गाँवों आदिमें लोगोंको नाटक आदि

देखने, उपन्यास आदि पढ़ने और इसी प्रकारके दूसरे कामोंके लिए बहुत ही कम अवसर मिलता है और सिनेमा आदि तो प्रायः दुर्लभ ही होते हैं। इसके सिवा वहाँ उत्तेजक खाद्य पदार्थों और व्यसनों आदिके साधन भी बहुत ही कम होते हैं। ऐसे कुटुम्बोंमें यदि स्त्रीको गर्भाधान हो जाता है, तो पहले कुछ समय तक एक साथ और एक ही शय्यापर सोने नहीं देते। वहाँ छोटे लड़कों और लड़कियोंको स्त्री-पुरुषका अनिर्बन्ध सहवास और विलास देखनेको नहीं मिलता और उनके मनमें लिंगविषयक कल्पना भी बहुत देरके बाद उत्पन्न होती है। वहाँ खराब लड़कोंकी सोहबतमें पड़नेकी सम्भावना भी बहुत कम होती है।

अब भी पुराने ढंगसे रहनेवाले बहुतसे हिन्दू कुटुम्बोंमें तरुण तथा प्रौढ पति पत्नी भी नित्य एक शय्यापर नहीं सोते। पति और पत्नीका सम्बन्ध यों ही कभी सालमें एक या दो बार होता है, और वह सम्बन्ध वास्तवमें उतना ही होता है जितना प्रजोत्पादन मात्रके लिए होना चाहिए। परन्तु अब दिनपर दिन यह प्रथा कम होती चली जा रही है और इसका प्रायः नाम मात्र ही बच रहा है।

७७. नौकरी, काम-धन्धे और व्यापार आदिके लिए और कुछ कुछ स्वाभाविक प्रवृत्तिके कारण भी आजकल दिन पर दिन परिवारके लोगोंकी एक दूसरेसे अलग रहनेकी प्रवृत्ति बराबर बढती जाती है। और इस प्रकार विभक्त होकर रहनेकी प्रथा और विशेषतः तरुण दम्पतिके मिलकर अलग रहनेकी प्रवृत्ति और आवश्यकता नगरोंमें अपेक्षाकृत अधिक होती जाती है।

इस प्रथाका परिणाम यह होता है कि युवक और युवती दोनोंके सहवासमें सकोच उत्पन्न करनेवाला कोई कारण या साधन नहीं रह जाता। ऐसे अवसरोंपर युवकके पीछे नौकरीका काम-धन्धेका झगड़ा तो कुछ अधिक रहता है, परन्तु उसके उपरान्त जो समय बचता है या कमसे कम जितनी देर तक वह घरमें रहता है, उतनी देर तक वह अपनी स्त्रीके बहुत ही समीप रहता है और उसकी काम-वासनाको स्फूर्तिका बहुत अच्छा साधन मिल जाता है। यह ठीक है कि उसका बहुतसा समय घरके बाहर भी बीतता है; परन्तु उस समय भी उसके सामने विलास, नाटक, सिनेमा और विलासी स्त्रियो तथा पुरुषोंके दृश्य ही अधिक रहते हैं। और फिर समवयस्क नवयुवकोंमें प्रायः

स्त्रियोंके सम्बन्धकी ही बातचीत करनेकी प्रवृत्ति अधिक होती है। उत्तेजक साधनोंकी भाँति उत्तेजक आहार और व्यसनासक्ति भी नगरोंमें अपेक्षाकृत बहुत अधिक होती है। इसके सिवा नगरोंकी हवा भी बन्द घिरी हुई और बहुत भारी होती है और इस प्रकारकी हवा पुरुषोंके लिए प्रायः उद्दीपक हुआ करती है।

इस प्रकारकी रहन-सहनमें स्त्रियों और पुरुषोंका सहवास अनिर्बन्ध रूपसे हुआ करता है और उनपर किसी प्रकारका नैतिक नियन्त्रण नहीं रह जाता। इसका परिणाम यह होता है कि उन्हें बार बार और बहुत अधिक समय तक औपचारिक मदन-विलास करनेका यथेष्ट समय मिलता है। इसी लिए उनके मनमें सदा कामविषयक विचार बने रहते हैं और सम्भोगके लिए उनकी उत्सुकता बहुत बढ़ जाती है।

छोटे लड़कों और लड़कियोंमें ज्यों ही कुछ समझ आने लगती है, त्यो ही उन्हें स्त्रियों और पुरुषोका अनिर्वन्ध सहवास और विलास देखनेका अवसर मिलने लगता है। इसलिए उनके मनपर वैषयिक संस्कार बहुत शीघ्र हो जाते हैं; और जिस परिस्थितिमें वे रहते हैं, वह परिस्थिति उनके ऐसे संस्कारोंमें बाधक नहीं होती, बल्कि उन्हें और भी उत्तेजना देनेवाली होती है। नाटकों और सिनेमाओं आदिमें उन्हें जो प्रत्यक्ष दृश्य और चित्र आदि देखनेको मिलते हैं, वे उनके सामने विषय-भोगके राजमार्गके रूपमें उपस्थित रहते हैं।

इसी लिए विभक्त होकर रहनेकी दशामें और नगरोंमें रहनेपर वैषयिक प्रवृत्तिकी उत्कटता बढ़ती तो है ही, साथ ही उसकी व्यापकता भी बहुत बढ़ जाती है।

७८. सब लोगोंके एकत्र रहनेकी कुटम्ब-प्रणालीमें और साधारणतः गाँवोंमें रहनेकी दशामें नययुवक स्त्रियो और पुरुषोंका प्रत्यक्ष और निकट सम्बन्ध बहुत ही कम होता है। इसके विपरीत नगरोंमें और विभक्त निवास-प्रथामें यह सम्बन्ध बराबर पग पगपर होता है। इसका एक परिणाम यह होता है कि पुरानी एकत्र कुटुम्ब-प्रथामें ऐसे अवसर बहुत ही थोड़े होते हैं, जिनमें किसी विषयमें पति और पत्नीमें रुचि और अरुचिका प्रश्न उत्पन्न हो, किसी प्रकारका मत-भेद खड़ा हो, किसीको यह कहना पड़े कि—"हम तो ऐसा ही समझते हैं।" कोई यह कहे "हम तो ऐसा ही करेंगे।" तात्पर्य यह कि वहाँ झगड़े-बखेड़ेकी छोटी

छोटी और साधारण बातें उठनेका बहुत ही कम अवसर रहता है। बहुत सी बारीक बातें नवयुवकों तक नहीं आतीं और बड़े बूढ़ों तक ही रह जाती हैं। इसी लिए छोटी छोटी बातोंमें पति और पत्नीका प्रत्यक्ष अतिपरिचय नहीं होने पाता और छोटी मोटी बातोंमें दोनोंको एक दूसरेसे बार बार 'हाँ' या 'नहीं' कहनेका अवसर नहीं आता, न उनके लिए अपनी पसन्द और नापसन्दके झगड़े करनेका अवसर मिलता है और न अधिक विरोध करनेका ही प्रसंग आता है।

छोटी मोटी बातोंमें जो सौम्य अथवा उग्र मतभेद होता है, वह कभी स्वयंसिद्ध अनिष्ट नहीं होता। परन्तु उसके कारण मनमें मतभेदकी प्रवृत्ति बहुत बढ जाती है और धीरे धीरे बराबर बढ़ती ही रहती है। इस प्रकारकी पड़ी हुई आदत चाहे स्वयं खराब न हो, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इसके कारण आगे चलकर बड़ी बड़ी बातोंमें अनबन होनेका मार्ग बहुत सुलभ हो जाता है, और यही बात सबसे अधिक बुरी है।

नगरोंके और विभक्त-निवास-प्रथाके इस अति सहवासके कारण और मत-भेदके बढते हुए प्रसगोंके कारण स्त्री और पुरुषमें एक दूसरेके अनुकूल बननेकी—दर गुज़र करनेकी प्रवृत्ति और सहिष्णुताकी भी बहुत आवश्यकता होती है। यदि उक्त प्रवृत्ति और सहिष्णुता उचित परिमाणमें न बढे, तो यह तुच्छ भेद भी गम्भीर स्वरूप प्राप्त कर लेता है और दोनोको अनेक प्रकारके कष्ट सहने पड़ते हैं। विशेषतः जब अतिसम्भोगके कारण युवक और युवतीका आपसका आकर्षण बहुत कम हो जाता है और दोनोंमें एक दूसरेके प्रति कुछ विराग या दुर्भाव सा उत्पन्न हो जाता है, तब यह छोटी छोटी बातोंकी अनबन भी बहुत अधिक कष्ट देने लगती है। कारण यह होता है कि उस समय अनुकूल बननेकी प्रवृत्ति और सहनशीलता बिलकुल नष्ट हो जाती है और दोषान्वेषण-की दृष्टि बहुत बढ़ जाती है।

७९. दिनपर दिन नगरोंका रहना और विभक्त निवास बराबर बढ़ता जा रहा है। गाँवोंमें और एकत्र कुटम्ब-निवास प्रथामें पहले जो कठोर निर्बन्ध हुआ करते थे, वे अब धीरे धीरे शिथिल होते चले जा रहे हैं। ऐसी अवस्थामें इस सामाजिक संक्रमणके समय यदि हम इन दोनों प्रणालियोंका कुछ तुलनात्मक विवेचन करें, तो कुछ अनुचित या अनुपयुक्त न होगा।

पिछले पृष्ठोंमें इन दोनों प्रणालियोंका जो अलग विवेचन किया गया है, यदि पाठक उसपर ध्यान देंगे, तो उनकी समझमें यह बात बहुत सहजमें आ जायगी कि इन दोनोंमें क्या क्या वैधर्म्य हैं और क्या क्या विशेषताएँ हैं।

नगरोंका और विभक्त निवास काम-वासनाकी व्यापकता भी बढ़ाता है और उत्कटता भी। इसके कारण पति और पत्नीका सहवास बहुत ही निकटका हो जाता है। चाहे गाँवोंके और एकत्र निवाससे इसकी उत्कटता कम न हो, तो भी इसकी व्यापकता अवश्य कम हो जाती है और पति तथा पत्नीका सहवास मर्यादित हो जाता है। परन्तु इसी मर्यादित होनेके कारण पति-पत्नी-सम्बन्धके विषयमें बालकोंके मनमें जिज्ञासा उत्पन्न होने लगती है और उनकी प्रवृत्ति इसका गूढ़ तत्त्व जाननेकी ओर होने लगती है। ऐसी परिस्थितिमें नगरोंका और विभक्त निवास अतिप्रसंगके लिए अधिक अनुकूल और उसके बादवाले अनिष्ट-प्रसंगके लिए अधिक पोषक होता है।

हम इस अवसरपर यह नहीं कहना चाहते कि निवासकी इन दोनों प्रणालियोंमेंसे कौनसी प्रणाली अच्छी या इष्ट है और कौनसी बुरी या अनिष्ट है। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि आजकल समाजकी प्रवृत्ति विभक्त होकर नगरोंमें रहनेकी ओर है। इस प्रथाका प्रभाव गाँवोंकी अविभक्त निवास-प्रथापर भी पड़ रहा है। इस प्रवृत्तिका ध्यान रखते हुए और प्रस्तुत विषयका अनुसरण करते हुए हमें केवल इतना ही कहना है कि संजीवन विद्याका वास्तविक रहस्य, वास्तविक महत्त्व और वास्तविक आवश्यकता विशेष रूपसे इस नवीन निवास-प्रथामें ही है।

ठीक और पूर्ण युवावस्थामें तरुण स्त्रियों और पुरुषोंमें अनिर्बन्ध रूपसे एक साथ मिलकर रहनेकी जो इच्छा होती है, वह विभक्त और नगरोंकी निवास-प्रथामें ही अधिक परिमाणमें तृप्त होती है। और यदि संजीवनी विद्याका व्रत धारण किया जाय, तो सहवासकी यह इच्छा कभी कम न होगी, बल्कि ज्योंकी त्यों बनी रहेगी और अधिक मोहक होकर वह कार्य-क्षमतामें बहुत वृद्धि करेगी।

सामाजिक दोष

८०. बहुतसे लोगोंको बीभत्स-कल्पनायुक्त शब्दोंमें गालियाँ देने और बीभत्स शब्दोंका व्यवहार करनेकी आदत सी होती है। आश्चर्य

यही है कि कुछ सुशिक्षित और सुसंस्कृत लोग भी इस बुरे अभ्यासको वलि पड़े हुए दिखाई पड़ते हैं।

यह प्रथा वहुत ही निन्दनीय है। विशेपतः छोटे वच्चों और स्त्रियोंके सामने इस प्रकारके शब्दोंका प्रयोग करनेकी प्रथा तो वहुत ही अधिक निन्दनीय है; और नवयुवकोंके सामने भी इस प्रकारके शब्दोंका प्रयोग करना निन्दनीय ही है।

हम इस प्रथाको इसलिए निन्दनीय कहते हैं कि जो लोग इस प्रकारकी गालियों और अपशब्दो आदिका व्यवहार करते हैं, स्वयं उनपर उन शब्दोंका कुछ भी परिणाम नहीं होता, दूसरोंपर ही होता है। वात यह है कि जो लोग नित्य अफीम खाते हैं, उनके सारे शरीरमें अफीमका विप इतना अधिक फैला हुआ होता है कि जितनी अफीमसे साधारण लोगोकी मृत्यु हो सकती है, उतनी अफीमसे अफीम खानेवालोंकी कोई विशेप हानि नहीं होती। ठीक यही दशा उन लोगोकी होती है जो गालियों और अपशब्दों आदिका व्यवहार करते हैं। इसके निन्दनीय होनेका दूसरा कारण यह है कि जिन नवयुवकोंके मनमें कुछ दवी हुई काम-वासना होती है, उनकी मनोवृत्ति ऐसे शब्दोंके प्रयोगसे उत्तेजित हो सकती है और उनके स्मृति-चित्रोके जागृत होनेकी अधिक सम्भावना होती है। तीसरा कारण यह है कि इसके द्वारा छोटे वच्चोंके जिज्ञासु मनपर सहजमें ही वहुत वुरा संस्कार वैठ जाता है। जो शब्द पहले उनके लिए अर्थशून्य होते हैं, उन्हीं शब्दोंका अब अर्थ जाननेकी ओर उनकी प्रवृत्ति होनेकी सम्भावना रहती है।

ये गालियाँ ऐसी होती है कि इनके शब्दोको सुनकर ही लोगोंके मनमें बुरे भाव उत्पन्न होते हैं। परन्तु यदि हम थोड़ी देरके लिए इन गालियो आदिपर भी कुछ ध्यान न दें, तो नाटकों और सिनेमाओं आदिमें जो दृश्य दिखाये जाते हैं, वे लोगोंके मनमें इन गालियोंकी अपेक्षा कहीं अधिक बुरे भाव उत्पन्न करते हैं। इतना ही नहीं, उनमें विलकुल स्पष्ट रूपसे और खुले आम जो स्त्रैण तथा कामोत्तेजक दृश्य आदि दिखलाये जाते हैं, वे वहुत ही अनिष्टकारक और नवयुवकोंके मनमें विप-वीज वोनेवाले होते हैं। प्रौढ लोग चाहे इस प्रकारके दृश्य देखें और चाहे न देखें, इस सम्वन्धमें हमें कुछ भी नहीं कहना है; परन्तु हम इतना अवश्य कहना चाहते हैं कि यदि विद्यार्थी

नवयुवक और अविवाहित लोग इस प्रकारके दृश्य न देखें, तो उनके शारीरिक तथा मानसिक आरोग्यकी दृष्टिसे यह उनके लिए बहुत अधिक हितकारक होगा।

दोष-परम्परा

८१. प्राय: माताएँ अपने लड़कोंसे पूछा करती हैं—क्यों बेटा, तुम्हें काली बहू चाहिए या गोरी? इसपर वह छोटा लड़का कह बैठता है—गोली। इससे माताको बहुत अधिक सन्तोष और आनन्द प्राप्त होता है और वह जल्दीसे बच्चेको गोदमें लेकर उसकी 'मिट्ठी' ले लेती है। यह कोरी निर्लज्जता ही नहीं है, बल्कि स्पष्ट रूपसे सन्तानद्रोह है।

हमारे समाजमें स्त्रियोंमें परम्परासे एक ऐसी बहुत ही बुरी आदत चली आ रही है जो अधिकांशमें अज्ञानके कारण उत्पन्न हुई है। बच्चे जहाँ कुछ सयाने और जरा सा बोलने चालनेके योग्य होते हैं, तहाँ वे पास-पड़ोसकी लड़कियों और लड़कोंके साथ अपनी सन्तानका सम्बन्ध जोड़ती हुई कहने लगती हैं—यह लड़की इस लड़केकी बहू है। अथवा यह लड़का इस लड़कीका पति है; और इस प्रकारकी बातें कह-कहकर उन छोटे बच्चोंके साथ परिहास करना आरम्भ कर देती हैं। लड़कियोंके सम्बन्धमें तो यह परिहास प्रायः तब तक चलता रहता है, जब तक उनका विवाह निश्चित नहीं हो जाता। जो समाज विवाह-सम्बन्धकी पवित्रताकी डींगें मारता हो, उसे तो इस प्रकारका परिहास बिलकुल शोभा नहीं देता। इस परिहासके साथ ही साथ माताओंके मनमें यह कल्पना भी होती है कि किसी तरह हमारी लड़की या लड़केके आगे सन्तान हो, हम नाती पोतोंका मुँह देखें। इस प्रकारकी बातोंके कारण छोटे लड़कों और लड़कियोंके मनमें असमयमें ही स्त्री-पुरुषके सम्बन्धकी कल्पना और सहवासकी उत्सुकता उत्पन्न होती है। जब लड़की केवल आठ-दस या बारह ही वर्षकी होती है और उसे स्त्री-पुरुषके सम्बन्धकी कुछ भी कल्पना नहीं होती, तभी उसके घरकी स्त्रियाँ उसके विवाहकी चिन्ता करने लगती हैं, और लड़का अभी सोलह सत्रह वर्षका भी नहीं होने पाता कि उसके मनमें विवाह और पत्नीके सम्बन्धके विचार प्रधानतासे अपना स्थान जमा लेते हैं।

यदि लोग गालियाँ ही देना चाहते हों, तो उन्हें उचित है कि वे कुछ

 तरहकी गालियाँ दें। जिन लोगोंको गालियाँ देनेका अभ्यास पड़ गया

है, उनसे हम आग्रहपूर्वक यही कहना चाहते हैं कि स्त्री और पुरुषके सम्बन्धकी सूचक अश्लील गालियोंमें अब कुछ भी नहीं रह गया है। उन्हें नई गालियोंका आविष्कार करना चाहिए।

साधारणतः कुटुम्बोंमें लड़कों और लड़कियोंको एक साथ और एक ही बिस्तरपर सुलानेकी प्रथा देखी जाती है। यह प्रथा बहुत ही बुरी है। इस प्रथाका जो दुष्परिणाम होता है, उसका ध्यानमें आना बहुत ही कठिन है; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रथासे भी बहुत अधिक अनर्थ होता है। केवल लड़कों और लड़कियोंको ही नहीं बल्कि समवयस्क छोटे बच्चोंको भी एक साथ एक ही बिछौनेपर कभी नहीं सुलाना चाहिए,× और विशेषतः ऐसी अवस्थामे तो और भी नहीं सुलाना चाहिए, जब कि उनपर घरके बड़े लोगोंकी देख-रेख न हो। संगतिकी बात भी उतने ही महत्त्वकी है। पालकों और अभिभावकोंका यह कर्तव्य है कि जिन लड़कोंकी संगतिमें उनके लड़के रहते हों, उनके और बाल्यावस्थाके उनके साथियोंके स्वभाव और आदतों आदिका भी वे बहुत ही सूक्ष्म रूपसे निरीक्षण करें।

८२. यह कहनेकी अपेक्षा कि शब्द, चित्र, चिह्न और दृश्य स्वयं ही अर्थपूर्ण हैं, कदाचित् यह कहना कहीं अधिक यथार्थ होगा कि मनुष्यकी मनोवृत्ति ही अर्थपूर्ण और अर्थसूचक हुआ करती है।

पाश्चात्य शिल्पकारोंके अर्ध-नग्न पुतले किंवा शरीर-बल-वर्धक पाश्चात्य मासिक-पत्रोंमें दिये स्त्रियोंके अर्ध-नग्न चित्र देखकर काम-वासनापूर्ण नवयुवकोंके मनमें सदा अनुचित और अनिष्ट कल्पनाएँ ही उत्पन्न होंगी; परन्तु जो लोग शिल्पशास्त्रके ज्ञाता होंगे अथवा जो अपना शारीरिक बल बढ़ाना चाहते होंगे, उनके मनमें उन पुतलों या चित्रोंको देखनेपर प्रमाणबद्धता और शरीरके अवयवोंकी भरी पूरी बाढ़की ही कल्पना होगी। ॐ

× मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥ —मनु. २, २१५.

ॐ आजकल सम्भोग-शृंगारके भिन्न भिन्न प्रकारोंमें और अर्धनग्न या पूर्ण नग्न अवस्थाओंके स्त्रियोंके चित्र प्रायः बड़े बड़े नगरोंमें खुले आम बिका करते हैं। यह बात बहुत ही अनिष्टकारक है।

पाश्चात्य नृत्य-प्रणालीमें स्त्रियों और पुरुषोंके शरीरपर बहुत ही थोड़े वस्त्र रहते हैं और दोनोंके शरीर भी आपसमें बहुत पास पास रहते हैं। साधारण लोग इस प्रकारके दृश्य देखकर यही कहेंगे कि इससे नीतिमत्ताका दिन-दहाड़े खून होता है; यद्यपि इस प्रकारके नृत्योंमें भी बहुतसे ऐसे युवक और युवतियाँ यथेष्ट संख्यामें और बहुत ही प्रसन्नतापूर्वक सम्मिलित होती हैं जिनकी वृत्ति सात्त्विक होती है और उन लोगोंके लिए इस प्रकारका नृत्य कभी शारीरिक अथवा मानसिक काम-लक्षणोंका उत्तेजक नहीं होता। हाँ, अशुद्ध मनोवृत्तिके जो नवयुवक उन नृत्योंमें सम्मिलित होते हैं, केवल उन्हींमें शारीरिक और मानसिक कामोद्दीपनके लक्षण दिखाई पड़ते हैं। नृत्यके समय भी और उसके उपरान्त भी उनकी मानसिक स्थिरता बहुत घटी हुई दिखाई पड़ती है। इसका कारण यही है कि प्रत्येक व्यक्तिपर बाह्य दृश्योंका प्रभाव उसके पूर्व संस्कारोंके ही अनुसार हुआ करता है।

यदि कहीं कोई युवती स्त्री विवस्त्र अवस्थामें दिखाई पड़ेगी, तो सात्त्विक वृत्तिका नवयुवक आपसे आप अपनी दृष्टि उसकी ओरसे हटा लेगा और इस बातको बिलकुल भूल जायगा। परन्तु जो मनुष्य कामी होगा, वह किसी स्त्रीको ऐसी अवस्थामें देखकर या तो अपनी ढिठाईके कारण बराबर उसी ओर देखता रहेगा और या कुछ दबी हुई वृत्तिके कारण कुछ ठहर ठहरकर उधर देखेगा। परन्तु उसका ध्यान बराबर उसी ओर बना रहेगा और वह इस प्रकारके दृश्य देखनेकी इच्छा या प्रयत्न भी करता रहेगा।

अपने पैरोंको चुभनेवाले काँटोंसे बचानेके लिए सारा संसार मुलायम चमड़ेसे नहीं ढका जा सकता। हमें उतने ही बड़े जूते पहनने चाहिएँ जो हमारे पैर भरके लिए यथेष्ट हों। यह सम्भव नहीं है कि संसारमें इस प्रकारके आकर्षक दृश्योंका नाश हो जाय। ऐसे दृश्य प्रायः सामने आते ही रहेंगे। परन्तु जो लोग अपने वीर्यका संरक्षण करना चाहते हों, वे अपनी मनोवृत्ति अवश्य बदल सकते हैं।

वयोमर्यादा

८३. जिन माता-पिताकी कन्या दस बारह वर्षकी हो जाती है, वे समझने लगते हैं कि अब यह विवाहके योग्य हो गई, और उसके विवाहके कारण वे दिन-रात बहुत अधिक चिन्तित रहते हैं। इधर हालमें विवाहकी वयोमर्यादा

बढ़ानेकी वहुत कुछ प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। * तिस पर भी इस समय ऐसे माता-पिताओंकी वहुत अधिक संख्या देखनेमें आती है, जो लड़कीके ऋतुमती होनेके पहले ही उसका विवाह कर डालनेका प्रयत्न करते हैं।

संजीवन विद्याकी दृष्टिसे वयोमर्यादाका विचार करते समय एक बात ध्यानमें रखनी चाहिए। वह यह कि साधारणतः विवाह होनेके उपरान्त प्रायः तुरन्त ही पति-पत्नीका सम्बन्ध हो जाता है, और पहले सहवासमें अधिक सम्भोग होनेका वहुत डर रहता है; और थोड़ी ही अवस्थामें जो अधिक सम्भोग किया जाता है, उसका वुरा परिणाम पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियों-पर वहुत अधिक होता है। समाजमें जो यह परिस्थिति देखनेमें आती है, उसे देखते हुए हमें कहना पड़ता है कि विवाहके समय वधूकी अवस्था कमसे कम इतनी अवश्य होनी चाहिए कि (१) उस अवस्थामें वधू किसी प्रकार समझा-वुझाकर और प्रार्थना या आग्रह करके पतिकी अनिवार्य सम्भो-गेच्छामें थोड़ी वहुत वाधा डाल सके। (२) वह जव चाहे और जव इस वातका संकल्प कर ले, तव इस प्रकारका प्रयत्न कर सके। और (३) उसके ऊपर रूढिद्वारा मान्य जो अत्याचार हो,. उसे वह, जहाँ तक हो सके, सहन कर सके।

हमारा आर्य वैद्यक-शास्त्र यह वतलाता है कि कन्याओंका विवाह कमसे कम १६ वर्षकी अवस्थामें और पुरुषोंका विवाह कमसे कम २४ वर्षकी अव-स्थामें होना चाहिए; और पाश्चात्य शरीर-शास्त्रके ज्ञाता लोग कहते हैं कि वधू और वर दोनोंका विवाह साधारणतः २३ वर्षकी अवस्थामें होना चाहिए। भारतवर्षके वातावरणमें यह वयोमर्यादा कमसे कम लड़कोंके लिए वहुत कुछ युक्तियुक्त है। हाँ, लड़कीकी वयोमर्यादा साधारणतः १६ वर्ष रखना ही उचित और उपयुक्त जान पड़ता है। परन्तु यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय,

---

* अभी हालमें भारतवर्षमें राय साहव हरविलास शारदाके प्रयत्नसे विवाहकी वयोमर्यादाके सम्वन्धमें एक कानून वना है, जिसके अनुसार लड़कोंका विवाह १८ वर्ष और लड़कियोंका विवाह १४ वर्षकी अवस्थासे पहले नहीं हो सकता। परन्तु यह कानून प्रचलित हो जानेपर भी अभी तक कहीं काममें नहीं लाया गया है।—अनुवादक।

तो यह मर्यादा बढ़ाकर २० वर्ष तक कर देनेमें भी कोई हानि नहीं है। अवश्य ही यह वृद्धि समाजकी इस सम्बन्धकी कल्पना और संस्कार तथा कौटुम्बिक और सामाजिक परिस्थितिकी अनुकूलताके अनुसार होनी चाहिए। यदि इस प्रकार प्रमाणवद्ध वृद्धि न होगी, तो विषम परिस्थितियोंमें बढ़नेवाली लड़कियोंकी मनोवृत्तिमें भी विषयासक्त लड़कोंकी मनोवृत्तिकी भाँति सामर्थ्य और स्वास्थ्यका नाश करनेवाली चंचलता उत्पन्न होगी; और जो नैतिक अवनति इस समय कुछ अंशोंमें एकागी है, वह सर्वांगीण हो जायगी।

विषम और विलक्षण वासना

८४. प्रो० मेचिनिकाफने Inharmonies of Human Life (मानवी प्रकृत्तिकी विषमता) नामकी एक बहुत सुन्दर पुस्तक लिखी है। साधरणतः लोग कहा करते हैं कि मनुष्य प्राणी सरीखे सजीव और नाजुक यन्त्रका निर्माण करनेमें ईश्वरने बहुत बड़ी कारीगरी की है—यह उसकी बहुत बड़ी करामात है। इन प्रोफेसर साहबका कहना है कि यह यन्त्र कोमल और कौतुकास्पद तो अवश्य है, परन्तु निर्दोष कदापि नहीं है। शरीरकी कुछ इन्द्रियोंकी नैसर्गिक प्रवृत्ति और मानवी इच्छामें जो विषमताएँ होती हैं, अथवा, यदि वेदान्तकी भाषामें कहा जाय तो, श्रेयस् और प्रेयस्में जो विरोध होता है, उसका दिग्दर्शन इन्होंने वैज्ञानिक ढंगसे और बहुत ही सुन्दर रीतिसे किया है, और यह बतलाया है कि इस विषमताके कारण मानवी जीवन कष्टप्रद होता है, और यदि यह विषमता किसी प्रकार नष्ट की जा सके, तो मानवी जीवन बहुत सुखमय हो जायगा और मृत्युकी भयंकरता बिलकुल न रह जायगी। यदि उनके ग्रन्थमें कोई दोष है, तो वह केवल यही कि उन्होंने केवल यही बतलाया है कि इसका निराकरण करनेका मार्ग शास्त्रोक्त या वैज्ञानिक होना चाहिए; परन्तु कोई ऐसी सूचना नहीं दी है जो प्रत्यक्ष रूपसे उपयोगी हो। पचनेन्द्रिय और आहार तथा प्रजोत्पादक अवयव और स्त्री-पुरुष-सम्भोगपर ही उन्होंने ज्यादा जोर दिया है।

विषय-वासना एक बहुत ही विषम और विलक्षण भावना है। मनुष्यमें वह इतनी छोटी अवस्थामें और इतनी जल्दी उत्पन्न होती है कि यदि उसी अवस्थामें वह वासना तृप्त की जाने लगे, तो वह अत्यन्त हानिकारक होती है।

डा० लेरेंडने एक ऐसी घटनाका उल्लेख किया है, जिसमें ६॥ वर्षकी अवस्थाके एक लड़केने बलपूर्वक सम्भोग किया था। यदि हम इसे अपवाद मानकर छोड़ भी दें, तो भी ऐसे बहुतसे उदाहरण मिलेंगे जिनमें १२ या १४ वर्षकी अवस्थामें ही बालकोंमें सम्भोगकी इच्छा उत्पन्न हो गई है। वासनाकी उत्पत्ति और उसकी तृप्तिकी इष्टता और शक्यतामें बहुत ही विलक्षण विषमता है; इसलिए विवाहकी इच्छाकी तृप्तिके एक ही इष्ट साधन या प्राप्तिकी वयोमर्यादा निश्चित करनेका काम बहुत ही विकट है। शरीर शास्त्रकी दृष्टिसे यह मर्यादा २३ से ३० वर्ष तकके बीचमें जितनी ही अधिक हो सके, उतना ही अच्छा है। परन्तु व्यवहारकी दृष्टिसे और मानस-शास्त्र या मनोविज्ञानकी दृष्टिसे इसकी मर्यादा २२ या २३ वर्षसे अधिक निश्चित करना ठीक नहीं होता। इसका कारण यही है कि यदि लड़का इतनी अवस्था तक अविवाहित रहेगा, तो प्रायः उसे अयोग्य मार्गसे अपनी वासना तृप्त करनेकी आदत पड़ जायगी। यद्यपि ऐसा होना नितान्त निश्चित और आवश्यक नहीं है, तथापि इसकी बहुत बड़ी सम्भावना रहती है। यदि वह अपनी यह वासना तृप्त न भी करने लगे, तो भी इसमें सन्देह नहीं कि उसका चित्त अत्यन्त चंचल हो जायगा और वह नैतिक दृष्टिसे व्यभिचारी बनने लग जायगा। वयोमर्यादाका कभी कानूनसे या बलपूर्वक बढ़ाना ठीक नहीं होता। इसकी अपेक्षा यदि सब जगह उसे सामाजिक और वैयक्तिक मनकी पवित्रताके द्वारा बढ़ानेका प्रयत्न किया जाय, तो उससे अधिक और वास्तविक लाभ हो सकता है।

स्त्री और पुरुषका भेद

८५. प्रेम और विवाह ये दोनों सर्वश्रेष्ठ पदार्थ हैं और सब जगह व्याप्त हैं। ये दो भिन्न भिन्न अणुओंमें भी दिखाई पड़ते हैं। हम लोग उसे आकर्षण कहते हैं। यह दो भिन्न भिन्न मूल द्रव्योंमें भी दिखाई पड़ते हैं और रसायन-शास्त्रके ज्ञाता लोग उसे सयोगप्रवणता (Affinity) कहते हैं। लोहे और चुम्बकमें यही बात देखनेमें आती है और उसे लोग चुम्बकत्व कहते हैं। लोग चाहे जो कुछ कहें या समझें, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यह उन दोनोंका विवाह ही है।

—डा० मैसनगुड

स्त्री और पुरुषका जो भेद है और जिसे लिंग-भेद कहते हैं, वह केवल स्थूल या शारीरिक ही नहीं है। दोनोंमें जो शारीरिक लिंग-भेद है,

वह तो वास्तवमें केवल ऊपरी भेद है। सच्चा भेद सूक्ष्म है और वह मूल गुणों तथा धर्मोंसे सम्बन्ध रखता है। इस संसारको चलानेवाली मुख्य शक्ति विश्व-चैतन्य है, जिसे भौतिक शास्त्रमें Energy कहते हैं। इस चैतन्यके भी वास्तवमें दो भेद हैं। वेदोंमें पुरुष और प्रकृतिकी कल्पना की गई है। शंकर अर्धनारी-नटेश्वरके रूपमें माने जाते हैं; अथवा यदि यही बात अधिक अर्थपूर्ण रूपमें कही जाय, तो हम इसे शिव और शक्तिका स्वरूप कह सकते हैं। ये सब कल्पनाएँ इन्हीं दोनों भेदोंके आधारपर की गई हैं। ये दोनों शक्तियाँ अलग अलग रहनेकी दशामें स्वयं न तो स्वतंत्र होती हैं और न पूर्ण होती हैं। इनमें स्वयंपूर्णता तभी आ सकती है, जब दोनोंका समीकरण हो। ब्रह्म जिस समय मायाके साथ सम्मिलित होगा, तभी साकार और सगुण विश्वका निर्माण हो सकेगा।

स्त्री और पुरुषके शारीरिक साहचर्यकी आवश्यकता केवल इन्द्रिय-संयोगके लिए नहीं होती। इन दोनों मूलतः भिन्न शक्तियोंके प्रवाहके समीकरणके लिए ही दो शरीरोंके मानसिक साहचर्यकी भाँति शारीरिक साहचर्यकी भी आवश्यकता होती है।

स्त्री और पुरुषका शारीरिक साहचर्य कितना उत्तेजक, कैसा नवजीवन-प्रद और कैसा सामर्थ्यवान् होता है, इसकी कल्पना उन नव-विवाहित स्त्रियों और पुरुषोंको पहले ही बहुत अच्छी तरहसे हो जाती है, जो पवित्र-वीर्य होते हैं।

परन्तु इसमें कठिनता एक ही स्थानपर आकर उपस्थित होती है। जो शारीरिक सहवास वास्तवमें आध्यात्मिक सहवासके लिए आवश्यक होता है, उसका तत्त्व और सत्त्व मनुष्य और उसमें भी विशेषतः पुरुष बिलकुल भूल जाता है; और केवल शारीरिक संगकी कल्पनासे ही पागल हो जाता है; और इस प्रकार आध्यात्मिक शक्ति-विनिमयको असम्भव करके अपनी शारीरिक शक्तिका नाश करता है।

यदि बादमें होनेवाला अनर्थ टाला जा सके, तो विवाहित स्त्रियों और पुरुषोंके एक साथ सोनेमें कोई हानि नहीं है। बल्कि हम तो यहाँ तक कह सकते हैं कि उनका एक साथ सोना ही इष्ट है। परन्तु ऊँचे तत्त्वोंके फेरमें पड़कर व्यवहार-मूढ़ बननेका अनर्थ किसीको नहीं करना चाहिए।

निद्रा और संजीवनी विद्या

८६. मानसशास्त्र या मनोविज्ञानके ज्ञाता लोग हमें यह बतलाते हैं कि रातको सोनेके समयसे कुछ पहले जो विचार मनमें उत्पन्न होते हैं, वे ही विचार सो जानेके उपरान्त भी कुछ देर तक बड़े वेगसे और निर्बाध रूपसे मनमें संचार करते रहते हैं। उन विचारोंका जागनेकी दशामें मन-पर जो संस्कार होता है, वह सोनेके बादकी इस क्रियासे और भी दृढ हो जाता है, अथवा इसी मार्गसे मनमें और नवीन संस्कार भी अनायास ही उत्पन्न हो जाते हैं।

सोकर उठनेपर ऐसा जान पड़ना चाहिए कि शरीरमें नये जीवनका संचार हो गया है; नये कामको नये जोशसे हाथमें लेनेकी शक्ति आनी चाहिए; और पहले दिन जो शारीरिक और मानसिक श्रम हुआ हो, उसका परिहार होना चाहिए। इस प्रकारकी नींद आनेके लिए सोनेके समय मनोवृत्तिका शान्त, प्रसन्न और निर्विकार होना आवश्यक है। यदि मनमें उस समय कुछ विचार रहें भी, तो वे विचार केवल ऐसे होने चाहिएँ जिनसे आत्मोन्नति हो सकती हो। यदि रातको सोनेके समय मनमें अनुचित और अनिष्ट विचार उत्पन्न होंगे, तो उस समयका सोना मानों अपनी छातीपर साँपको रखकर सोनेके समान होगा। इसी लिए जो लोग अपने वीर्यकी रक्षा करना चाहते हो, उन्हें रातको सोनेके समय कभी भूलकर भी अपने मनमें स्त्री-प्रसंगकी कल्पना या वासनाको स्थान नहीं देना चाहिए। केवल इतना ही नहीं, बल्कि उन्हें अपने मनमें इसकी विरोधी भावनाको भी स्थान नहीं देना चाहिए; क्योंकि उससे भी इस सम्बन्धकी वासना या कल्पना जाग्रत रहती है। तात्पर्य यह कि रातको सोनेके समय मनमे किसी प्रकारसे कामका विकार होना बहुत ही बुरा और हानिकारक है। उस समय तो मनमें इस प्रकारकी कल्पना भी नहीं होनी चाहिए कि स्त्रीका प्रसंग भयंकर होता है।

इसका कारण यह है कि सोनेके समय मनमें जो भावनाएँ उत्पन्न होती हैं, वह रातभर मनमें बनी रहती हैं। इसके अतिरिक्त दिनभर बार-बार मनमें जो विचार उठा करते हैं, उनका भी मनःपटलपर प्रभाव पड़ता रहता है; और इस प्रकारके अनेक कल्पना-खंडोंके विलक्षण एकीकरणके कारण सोनेकी दशामें मनमें अनेक विचित्र कल्पनाएँ उठने लगती हैं और तरह तरहके स्वप्न दिखाई पड़ने लगते हैं। यदि रातको सोनेके समय मनमें यह भी सोचा

जाय कि काम-विकार बुरा होता है, तो भी इस प्रकारकी कल्पनाओंमेंसे काम-विकारकी किसी कल्पनाका पहलेकी कल्पनाओंमेंसे किसी क्षीण कल्पनाके साथ संयोग हो जाता है जिससे मन कामातुर रहता है। इस लिए जिस प्रकार लोग रातको सोनेके समय चोरोंसे बचनेके लिए अपने घरोंके सब किवाड़ आदि अच्छी तरह बन्द कर लेते हैं, चूहों और नेवलों आदिसे बचानेके लिए सब चीजें अच्छी तरह ढक या छिपाकर रख देते हैं और सब चीजोंकी खूब हिफाजत कर लेते हैं, उसी प्रकार रातको सोनेके समय भी खूब अच्छी तरहसे ऐसा प्रबन्ध कर लेना चाहिए, जिससे मनोमन्दिरमें विषय-वासनाएँ घुसने न पावें और दुष्ट कल्पनाओंके चूहे सत्संकल्पका सूत्र तोड़ने न पावें।

८७. यदि रातको सोनेके साथ मनमें काम-वासना प्रत्यक्ष रूपसे जाग्रत हो, तो 'जैसेको तैसा' इस सिद्धान्तके अनुसार उसे उसी अवस्थामें ज्योंकी त्यों नष्ट करनेके लिए निरन्तर मनमें प्रत्यक्ष रूपसे ऐसी कल्पनाका अवलम्बन करते रहना चाहिए कि काम-वासना अत्यन्त हानिकारक है; और ऐसी पुस्तकोंका अध्ययन या मनन करना चाहिए जिनसे मनमें यह बात बहुत अच्छी तरह बैठ जाय कि काम-वासना बहुत ही भयंकर है।

यदि सोनेके समय मनमें काम-वासना प्रत्यक्ष रूपसे जाग्रत न हो, तो जैसा कि पिछले प्रकरणमें बतलाया जा चुका है, इस प्रकारकी प्रत्यक्ष विरोधी कल्पनाओंके बदले सोनेके समय ऐसी पुस्तकोंके पढ़ने या मनन करनेमें समय बिताना चाहिए, जिनसे अप्रत्यक्ष विरोधी अर्थात् अत्यन्त उदात्त, दैवी और आत्मोन्नतिकारक विचारोंका उद्दीपन हो।

रातको सोनेके समय जब भोजन किया जाय, तब भूखसे दो ग्रास कम ही खाना चाहिए; मल-मूत्र आदिका उत्सर्ग कर लेना चाहिए; पानी बहुत अधिक नहीं पीना चाहिए; बहुत मुलायम और गुदगुदे बिछौनेपर नहीं सोना चाहिए, चित्त या सीधे होकर नहीं सोना चाहिए और घिरी हुई और बन्द जगहमें नहीं सोना चाहिए; क्योंकि ये सब बातें उत्तेजक होती हैं। यदि इन सूचनाओंकी ओर पूरा पूरा ध्यान न दिया जायगा, तो वासनाके क्षोभ और वीर्यके नाशको उत्तेजना मिलनेकी सम्भावना होगी।

रातको सोनेके समय कोई स्तोत्र पढ़ने या अच्छी धार्मिक पुस्तक पढ़नेकी प्रणाली बहुत अच्छी है। जिस प्रकारका अध्ययन और मनन पसन्द हो या

आवश्यक जान पड़े, उस प्रकारका अध्ययन या मनन करना वीर्य-संजीवनकी दृष्टिसे इष्ट है।

यदि रातको सोनेके समय मनमें काम-वासना प्रत्यक्ष रूपसे जाग्रत न हो, तो भी ऐसे ग्रन्थोंका अध्ययन और मनन करना आवश्यक है जिनसे उदात्त और आत्मोन्नतिकारक विचारोंकी वृद्धि हो। यदि काम-वासना प्रत्यक्ष रूपसे जाग्रत हो, तो इस बातकी और भी अधिक आवश्यकता होती है। और यदि वासना तीव्र हो, तो इस प्रकारके उपायोंके स्थानपर पूरा पूरा काम देनेवाला यथेष्ट व्यायाम या शीत-स्नान भी अवश्य कर लेना चाहिए।

एकशय्या या पृथक्शय्या

पृथक्शय्या च नारीणामशास्त्रविहितो वधः।

८८. कुम्भकरणने इन्द्र-पदके बदलेमें निद्रा-पद माँगा था, परन्तु यह पद उसने भूलसे माँगा था। बहुतसे कामी पुरुष रात होते ही जान-बूझकर इसी बातकी इच्छा करते होंगे कि हमें इन्द्र-पदके बदलेमें निद्रा-पद मिले, इन्द्रकी गद्दीके बदलेमें निद्राकी गद्दी मिले।

जो लोग अविवाहित हैं या जिनकी स्त्री पास नहीं है, उन्हें सोनेके समय जिन साधारण नियमोंका पालन करना चाहिए, उनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। वही नियम उन लोगोके लिए भी ठीक तरहसे प्रयुक्त हो सकते हैं, जो विवाहित हैं अथवा जो अपनी स्त्रीके साथ रहते हैं। परन्तु ऐसे लोगोंके सम्बन्धमें एक नवीन प्रश्न उत्पन्न होता है। वह यह कि विवाहित स्त्रियो और पुरुषोंको रातके समय एक साथ एक ही शय्यापर सोना चाहिए या अलग अलग सोना चाहिए। इस प्रश्नका एक उत्तर ऊपर दिये हुए श्लोकार्धमें आ चुका है। इसका अभिप्राय यह है कि स्त्रीको अपनेसे अलग बिछौनेपर सुलाना मानों उसे प्राण-दंड देना है। इसके विपरीत बहुतसे ऐसे लोग भी मिलते हैं, जो यह कहते हैं कि स्त्री और पुरुषको कभी एक साथ एक ही बिछौनेपर नहीं सोना चाहिए; और अनेक स्थानोंमें यही प्रथा देखनेमें भी आती है। परन्तु यह बात किसी तरह नहीं कही जा सकती कि इनमेंसे पहला मत विषयान्ध लोगोंका है और दूसरा मत विरक्तोंका है। हमारी सम्मतिमें दोनों ही मतोंमें सत्यका कुछ न कुछ अंश है।

यदि मनुष्यके स्वभावकी दुर्बलताका ध्यान रक्खा जाय और साथ ही उस अनुभवका भी ध्यान रक्खा जाय जो सब जगह होता है, तो इन दोनोंमेंसे पृथक्‌शय्यावाला मार्ग ही अधिक सुरक्षित जान पड़ता है। जो लोग संकटमें पड़कर भी अन्तमें यशस्वी होकर बाहर निकलना चाहते हैं, यह मार्ग उनकी वृत्तिके अनुकूल नहीं पड़ता; तो भी हमें इतना अवश्य कहना पड़ता है कि जो लोग पहलेसे ही संकटका अनुमान करके उससे बचनेके लिए अनेक प्रकारके उपायोंका अवलम्बन करते हैं और सावधान होकर रहना चाहते हैं, उनके लिए अर्थात् साधारण वृत्तिके लोगोंके लिए यह मार्ग विशेष श्रेयस्कर है।

"आहार, वायु और जल आदिके सम्बन्धमें ठीक ठीक नियमोंका पालन करनेसे ही विवाहित स्त्री-पुरुष अपने ब्रह्मचर्यकी ठीक तरहसे रक्षा नहीं कर सकते। उन्हें एकान्तमें एक दूसरेके साथ मिलना और गुप्त सहनिवास भी छोड़ देना चाहिए। थोड़ासा विचार करनेपर यह पता चल जायगा कि अपनी स्त्रीके साथ एकान्तमें उठने बैठने और रहनेका इसके सिवा और कोई उद्देश्य हो ही नहीं सकता कि उसके साथ सुखका उपभोग किया जाय। रातके समय स्त्री और पुरुष दोनोंको अलग अलग कोठरियोंमें सोना चाहिए।

—महात्मा गाँधी

८९. प्रायः लोग यह कहा करते हैं कि जब आगके पास घी रहेगा, तब वह पिघलेगा ही। इसी उपमाका ध्यान रखते हुए बहुतसे लोग यही मान बैठते हैं कि जब स्त्री और पुरुष दोनों एक साथ सोएँगे, तो वीर्यका नाश भी अवश्य ही होगा और उनका यह कथन सर्वांशमें असत्य भी नहीं है।

यह ठीक है कि इस प्रकारके प्रसंग आने ही नहीं देना चाहिए, पर साथ ही यह भी ठीक है कि पूर्ण विरहका प्रसंग भी नहीं आने देना चाहिए। इस-लिए यही ठीक जान पड़ता है कि स्त्री और पुरुष दोनों एक ही स्थानपर या एक ही कमरेमें परन्तु अलग अलग बिछौनोंपर सोया करें। जो वासना घरकी दीवारों, नीतिकी मर्यादा, लज्जाके घेरे और नियमके तटको भी सम्भोगके सम्बन्धमें सहजमें उल्लंघन कर सकती है, वह भला बित्ता भर या हाथभरके अन्तरको क्या समझेगी? तो भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि इससे इन्द्रि-यके क्षोभकी सम्भावना थोड़ी बहुत कम हो जायगी। वीर्य-संजीवनका सच्चा

आनन्द, सच्चा रहस्य और सच्चा प्रभाव स्त्री और पुरुषके एक साथ एक ही शय्यापर सोकर और आपसमें शरीर-सहवासके द्वारा प्राण-विनिमय करके वीर्यकी रक्षा करनेमें है। और ऐसा करना असम्भव भी नहीं है।

केवल शय्या अलग अलग रखनेसे ही क्या लाभ हो सकता है? वास्तवमें मनोवृत्ति बदलनी चाहिए। जब मनोवृत्ति बदल जायगी, स्त्रीके सुखकी कल्पना ही बदल जायगी, सच्चे सुखकी प्राप्तिके लिए तीव्र उत्कंठा होने लगेगी और उसका चस्का पढ़ जायगा, तो फिर वीर्यकी रक्षा असम्भव न होगी। अबतक इस बातका विवेचन किया जा चुका है कि इस प्रकारके निर्मल सहवासको सम्भव करनेके लिए क्या क्या करना चाहिए; और आगे भी इसका थोड़ा बहुत विवेचन होगा। यह ठीक है कि घी जब आगके पास रक्खा जायगा, तो वह अवश्य पिघलेगा; परन्तु स्त्रियों और पुरुषोंके मनमें जो कामाग्नि रहती है, वह शान्त की जा सकती है। यदि घी और अग्निके मध्यमें भी पवित्र वृत्तिकी ऐसी दीवाल खड़ी की जा सके, जो उष्णताकी प्रतिबन्धक हो, तो घी कभी नहीं पिघलेगा।

"दिनके समय स्त्री और पुरुष दोनोंको चाहिए कि अपना सारा समय अच्छे काम-धन्धोंमें बितावें और नित्य मनको सुविचारोंकी ओर ही प्रवृत्त करें और उन्हींका अभ्यास करें। सदा ऐसी ही पुस्तकोंका अध्ययन करें, जिनसे सुविचारोंका उत्ते-जन और पोषण हो। शृंगार रससे पूर्ण अश्लील नाटकों और उपन्यासों आदिको पढकर अपनी शारीरिक, मानसिक और नैतिक हानि करनेमें अपने बहुमूल्य समयका अपव्यय न करें। अच्छे कर्तृत्ववान् और नीतिमान् पुरुषों और स्त्रियोंके चरित्र पढ़ा करें और उनमेंके रहस्य समझकर उनके अनुसार कार्य करनेकी इच्छा करें; बराबर मनन करते रहें और बराबर मनमें यह समझते रहें कि विषय-वासनामें पड़नेसे केवल दुःख ही प्राप्त होता है।

—महात्मा गाँधी

लाचारीकी हालतमें क्या करना चाहिए

९०. जिन लोगोंमें काम-वासना बहुत तीव्र हो, उन्हें कुछ दिनोंतक एक साथ और कुछ दिनोंतक बिलकुल अलग अलग सोना चाहिए। उन्हें केवल अलग बिस्तरपर ही नहीं सोना चाहिए, बल्कि अलग अलग कमरेमें भी सोना

चाहिए। बीच बीचमें उन्हें एक दूसरेको छोड़कर अलग अलग गाँवों या नगरोंमें भी रहना चाहिए।

विवाह हो जानेके उपरान्त लड़कियाँ प्रायः बहुत जल्दी जल्दी अथवा सालमें कमसे कम एक दो बार अपने मैकेमें जाकर रहा करती हैं। यह प्रथा इस दृष्टिसे तो अच्छी और आवश्यक है ही कि लड़कीको स्वभावतः इस बातकी इच्छा हुआ करती है कि जिन लोगोंके साथ वह जन्मसे बराबर रहती आई है, फिर उन्हीं लोगोंके पास जाकर रहे; परन्तु वीर्य-विनिमयकी दृष्टिसे भी यह प्रथा बहुत अच्छी और आवश्यक है। इसका कारण यह है कि इस प्रथासे वीर्य-विनिमयके उस अतिरेकमें कुछ बाधा पड़ जाती है, जो विवाहके उपरान्त पहले ही वर्षमें होता है। और अतिसंगके कारण आपसमें मनमें जो अनबनका भाव उत्पन्न होता है अथवा एक दूसरेके प्रति अनास्था, अनादर या उद्वेग आदिके भाव उत्पन्न होते हैं, उनका एक बहुत बड़े अंशमें निराकरण या प्रतीकार हो जाता है।

इसलिए जो लोग बहुत ही कामुक हों, उन्हें इस प्रकार अलग अलग कमरों, अलग अलग गाँवों या नगरों और अलग अलग परिस्थितियोंमें रहकर वीर्य विनिमयका काम रोकना चाहिए। और यह विरहका समय काम-वासनाके विचारोंमें और उसे बढ़ानेवाली बातोंमें नहीं बिताना चाहिए, बल्कि उस समय ऐसे काम करने चाहिएँ, जिनमें बहुत अधिक परिश्रम पड़ता हो, अच्छे लोगोंकी संगतिमें रहना चाहिए और अच्छे काम करने चाहिएँ। लगातार बहुत दिनों तक एक ही बारमें दोनोंके दूर दूर रहनेकी अपेक्षा बार बार कुछ नियत समय तक दूर दूर रहना अधिक लाभदायक होगा। ऐसा करनेसे काम-वासनाका क्षोभ बहुत अधिक प्रबल और अनिवार्य नहीं होगा।

तात्पर्य यह कि जिस प्रकार हो सके, बुद्धिमत्तापूर्वक ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि जिसमें स्थूल रूपसे वीर्य-हानि न हो, और उसीके साथ साथ मानसिक वीर्य-हानिके मार्गमें भी बाधा पड़े। जब स्त्रीका मासिक ऋतुकाल आता है या वह बीमार पड़ जाती है, तब पुरुष उसके सम्भोगसे जो अलग रहते हैं, वह स्वयं प्रयत्नपूर्वक ऐसा नहीं करते, बल्कि उस समयकी परिस्थिति ही ऐसी होती है कि उन्हें विवश होकर ऐसा करना पड़ता है। अपने मनको रखनेकी दृष्टिसे जो सम्भोग-त्याग अपरिहार्य परिस्थितिमें पड़कर और

ऐसे कारणसे किया जाता है जिसपर अपना कोई वश नहीं होता, उसकी अपेक्षा उस सम्भोग-त्यागका महत्त्व अवश्य ही बहुत अधिक होता है, जो स्वेच्छा और प्रयत्नपूर्वक होता है और जिसमें जान-बूझकर ऐसी अपरिहार्य परिस्थिति उत्पन्न की जाती है।

सुखको मिट्टीमें मिलानेवाले

९१. पति और पत्नीके सम्बन्ध तथा सुखको नष्ट करनेवाले चाण्डाल दो हैं। एक तो संशय और दूसरा अतिसंग।

जो स्त्री समझदार और होशियार होगी, वह अतिसंग करनेवाले पतिके मनोनिग्रहके काममें बहुत कुछ सहायता कर सकेगी। स्त्रीको यह उचित है कि वह मीठी मीठी बातें कहकर और पतिके स्वभावके ज्ञात गुणोंका ध्यान रखकर उसकी प्रवृत्ति बदलनेका प्रयत्न करे और उसका ध्यान दूसरी ओर बँटावे। यदि वह यह समझती हो कि इस मार्गका अवलम्बन करनेसे कोई अच्छा फल नहीं होगा, तो उसे ऐसे शब्दोंमें अपने पतिके साथ बहस करनी चाहिए और युक्तिपूर्वक उसे समझाना-बुझाना चाहिए, जो योग्य हों और क्षोभक न हों। उसे इस सम्बन्धमें अपने पतिके कान बराबर खोलते रहना चाहिए; और यदि आवश्यकता पड़े और कोई खराबी होती हुई न दिखाई पड़े, तो उसे इसके लिए अपने पतिकी भर्त्सना भी करनी चाहिए। जब इन सब उपायोंसे उसकी काम-वासना कम होने लगे, तब उसका मन किसी ऐसे दूसरे कामकी ओर फेरनेका प्रयत्न करना चाहिए जो उसे पसन्द हो या जिसकी ओर उसकी रुचि हो। इस प्रकारके उपायोंसे तथा उसकी समझमें इसी प्रकारके और जो उपाय आवें उनके द्वारा उसे पतिके वीर्य-नाशमें बाधा उपस्थित करनी चाहिए—उसमें रुकावट डालनी चाहिए।

जो समझदार पति वीर्य-संजीवनका व्रत ग्रहण करना चाहता हो, अथवा जहाँ तक हो सके, मनोनिग्रह करना चाहता हो, उसे उचित है कि वह अपनी पत्नीको इस सम्बन्धके सब विचार पहलेसे ही बतला दे और अच्छी तरह उसे समझा दे। यदि उसकी पत्नी नितान्त मूढ़ हो, तो लाचारी है; परन्तु फिर भी जहाँ तक हो सके, उसके मनमें यह बात अच्छी तरह बैठा दे कि वीर्य-संरक्षण कितना अधिक महत्त्व रखता है। इसके दो कारण हैं। एक कारण तो यह है कि इस प्रकार पतिके निश्चयका पालन करानेमें पत्नी ऊपर कहे अनुसार प्रत्येक उपायसे उसकी सहायता करेगी और अपने कर्त्तव्यकी,

लज्जाकी, लिहाजकी और जबर्दस्तीकी वाहियात कल्पनाओंको छोड़ देगी। इस सम्बन्धमें यह बात बहुत ही महत्त्वकी है। दूसरा कारण यह है कि जब बहुत अधिक सम्भोग करनेवाला और अति स्त्रैण पति सम्भोग करना कम कर देता है और उसकी स्त्रैणता भी कुछ कम हो जाती है, तब बेचारी निरपराध पत्नीके मनमें इस बातकी शंका और चिन्ता उत्पन्न होनेकी बहुत अधिक सम्भावना रहती है कि कहीं मेरे पतिका प्रेम किसी दूसरी स्त्रीसे तो नहीं हो गया है, या कमसे कम मुझ परसे मेरे पतिका प्रेम कहीं कम तो नहीं हो गया है। वह बेचारी तो ये सब बातें सोचकर उद्विग्न और दुःखी रहती है और इसके विपरीत पति यह समझकर उससे नाराज रहने लगता है कि मेरी पत्नी जितनी स्वच्छन्दताके साथ पहले मेरे साथ व्यवहार करती थी, अब वह उतनी स्वच्छन्दतासे व्यवहार नहीं करती।

रेतोर्ध्वीकरण

९२. जितनी भिन्न भिन्न शक्तियाँ हैं, वे सब एक ही मूल शक्तिके रूपान्तर हैं, इसी लिए उन सबका भी रूपान्तर किया जा सकता है और उनका कार्य-क्षेत्र भी बदला जा सकता है। वासना अथवा इच्छा एक आद्य या मूल शक्ति है। काम-वासना ज्यों ही मनमें उत्पन्न होती है, त्यों ही वह शरीरमेंके जीव-परमाणुओंके प्रति प्रचण्ड अनर्थ करने लगती है। परन्तु यदि उसी वासनाका रूपान्तर कर दिया जाय और उसका कार्य-क्षेत्र बदल दिया जाय, तो वही वासना बहुत उपकारक बनाई जा सकती है। काम-वासनासे कामेन्द्रियके क्षुब्ध होनेपर सारे शरीरमें जो शक्ति फैल जाती है, यदि उसे वीर्य-नाशके द्वारा शरीरसे बाहर निकाल फेंकनेके बदले इच्छाशक्तिके द्वारा वह शक्ति किसी विशिष्ट अवयवमें खींची जाय, तो वीर्य-नाशसे तो रक्षा हो ही जाती है, साथ ही अपना वह अवयव बलवान् भी बनाया जा सकता है। राजयोगमें इसे वज्रोली मुद्रा कहते हैं। यह क्रिया है तो बहुत ही विकट, परन्तु उतनी ही असाधारण हितकारक भी है।

जिस समय मनमें काम-वासना प्रबल हो और उसके कारण कामेन्द्रियका क्षोभ हो, उस समय सरलतापूर्वक चित्त और स्वस्थ होकर लेट जाना चाहिए और दो चार बार धीरे धीरे दीर्घ श्वास बाहर निकालना चाहिए। इसके उपरान्त शरीरको निश्चल करके मनको कामेन्द्रियकी ओर एकाग्र करनेका प्रयत्न करना चाहिए। इसके उपरान्त मनमें पूरी तरहसे इस प्रकारकी कल्पना

करनी चाहिए कि कामेन्द्रियमें जो चैतन्य है, उसे हम पृष्ठरज्जुके मार्गसे धीरे धीरे खींचकर ऊपर ला रहे हैं और मस्तिष्क, छाती, पीठ, कमर, गरदन आदिमेंसे किसी एक इष्ट अंगपर वह शक्तिप्रवाह छोड़ रहे हैं। इस काममें मनके जितने एकाग्र होनेकी आवश्यकता होती है, यदि वह उतना ही एकाग्र हो सके, तो ऐसा जान पड़ने लगता है कि वीर्यका प्रवाह उस विशिष्ट अवयवकी ओर हो रहा है, और इन्द्रियपर जो खिंचाव पड़ता है, वह कम हो जाता है। यदि किसी विशिष्ट अवयवपर वह प्रवाह न छोड़ना हो, तो उसे नाभिके नीचेके स्तरमें रहनेवाले सूर्यकमलपर छोडना चाहिए। उस दशामें वह प्रवाह सारे शरीरके लिए पोषक होगा।

यदि अपने मनपर थोड़ा सा भी अधिकार हो, तो वीर्यकी रक्षा करनेका यह तत्कालीन उपाय बहुत ही अच्छा है। परन्तु यदि यह देखनेमें आवे कि केवल इतनेसे काम नहीं चलता, तो फिर व्यायाम, शीत-स्नान, खुले स्थानमें भ्रमण आदि कड़े और उग्र उपायोंका अवलम्बन करना चाहिए।

स्त्री-पूजन

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र सम्पदा।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

९३. प्रायः अवसरोंपर घरकी वृद्धा स्त्रियाँ उद्विग्न होकर सन्तापसे या चिडचिड़ाकर अपने लड़कोंसे कहा करती हैं कि अब तुम अपनी स्त्रीको सिंहासनपर बैठाकर उसकी पूजा किया करो। परन्तु वास्तविक बात यह है जहाँ स्त्रियोंका पूजन होता है, वहाँ सारी सम्पत्ति आकर एकत्र हो जाती है। और हम तो यहाँ तक कहेंगे कि जहां स्त्रियोंका पूजन होता है, वहाँ सारी सामर्थ्य, समृद्धि और शान्ति आकर एकत्र हो जाती है।

मातृपूजन तो सभी जगह और विशेषतः पूर्वीय देशोंमें सभी घरोंमें देखनेमें आता है, परन्तु अपनी स्त्रीको भी देवी मानकर उसकी पूजा करनेकी प्रथा नितान्त अशास्त्रीय, अशिष्ट अथवा अज्ञात नहीं है। कदाचित् यह कहनेमें कोई हरज न होगा कि स्वामी रामकृष्ण परमहंसने अपनी परमहंस वृत्तिको अधिक बलवान् बनानेके लिए कुछ अंशोंमें इसी मार्गका अवलम्बन किया था।

जो अति स्त्रैण और कामी वृत्तिके लोग अपनी इस नीच वृत्तिको रोकना चाहते हों और जो लोग यह समझते हों कि हम अपनी स्त्रीके साथ उतना

आदरपूर्ण व्यवहार नहीं करते जितना आदरपूर्ण व्यवहार हमें करना चाहिए, वे यदि इस मार्गका अवलम्बन करें, तो कोई हानि नहीं है।

अपने मनमें यह समझ लेना चाहिए कि प्रत्येक स्त्री देवी है; और जब कोई स्त्री—विशेषतः युवती तथा सुन्दर स्त्री—दिखलाई पड़े, तो इस प्रकारकी वृत्तिवाले लोगोंको उचित है कि वे अपने मनमें उसे देवी समझकर उसकी वन्दना करें और भावनाशील वृत्तिसे मनमें कोई ऐसा श्लोक कहें जिसमें स्त्रीको देवी मानकर उसकी वन्दना की गई हो।

सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोस्तु ते ॥

पराई स्त्रीकी भाँति स्वयं अपनी स्त्रीके सम्बन्धमें भी मनमें इस प्रकारकी भावना उत्पन्न करनेमें और उसे बढ़ानेमें कोई हानि नहीं है। स्त्रियोंके सम्बन्धमें मनमें जो अनिष्ट कल्पनाएँ उत्पन्न हुआ करती हैं, वे इस उपायसे जड़से ही बदल जायँगी और स्त्रीत्वके सम्बन्धकी कल्पनाओंपर दैवी छाप बैठने लगेगी। अपनी स्त्रीका यह मानस-पूजन नित्य रातको सोनेके समय और प्रात:काल उठनेके समय करना चाहिए। *

व्यायाम

९४. चाहे कोई व्यायाम हो, वह अशक्तको शक्ति प्रदान करता है और सशक्त लोगोकी शक्ति बढ़ाता है। इसके सिवा उससे कामवासनाकी भी कमी होती है। इसलिए प्रत्येक नवयुवकको किसी प्रकारका व्यायाम अवश्य और नित्य नियमपूर्वक करना चाहिए।

व्यायामका जो तात्विक महत्त्व और उसके जो सुन्दर परिणाम होते हैं, उनका यहाँ वर्णन करनेकी आवश्यकता नहीं है। यहाँ जो व्यायाम बतलाये जाते हैं, वे उन लोगोंके लिए हैं, जो हस्तमैथुन, स्वप्नदोष और अति स्त्री-प्रसंग आदि दुर्व्यसनोंके कारण अपनी बहुत कुछ शारीरिक हानि कर चुके हों। ये व्यायाम नित्य रातको सोनेके समय और प्रातःकाल उठनेके समय करने चाहिएँ। व्यायामके सम्बन्धमें जो साधारण नियम हैं, उनका ध्यान रखते हुए ये व्यायाम करने चाहिएँ।

---

* क्या तुम जानते हो कि शक्तिका सच्चा उपासक कौन है? जो आदमी यह कहता है कि विश्वमें परमेश्वर सर्वव्यापी चालक है और वह अपनी शक्ति स्त्रियोंके द्वारा प्रकट करता है, वही शक्तिका सच्चा उपासक है।—स्वामी विवेकानंद।

व्यायाम नं० १—जिस प्रकार चित्र नं० १ में दिखलाया गया है, उस प्रकार खड़े होकर कोहनी परसे हाथका अगला भाग और कलाई ४०-५० बार जल्दी जल्दी ऊपर नीचे करनी चाहिए। इस बीचमें बराबर दीर्घ और पूर्ण श्वास लेते रहना चाहिए। इस प्रकार तीन बार करना चाहिए। इसके उपरान्त मनमें यह समझते हुए कि मानों हम कोई बहुत भारी चीज उठा रहे हैं, भुजदंडके स्नायुओंपर जोर देते हुए हाथ ऊपर और नीचे करने चाहिएँ।

व्यायाम नं० २—हाथोंको खूब कड़ा करके ठीक क्षितिजके समान्तरपर रखना चाहिए और अन्दरकी ओर दीर्घ श्वास खींचते हुए हाथ अपने ठीक सामने लाकर जहाँ तक हो सके, पीछेकी ओर ले जाने चाहिए। जब तक दम न भर जाय, तब तक यह व्यायाम करना चाहिए। (देखो चित्र नं० २)

व्यायाम नं० ३—खूब सीधे होकर और तनकर खड़े होना चाहिए और पहले दाहिने घुटनेके बलपर इतना झुकना चाहिए कि हाथ जमीनसे लग जायँ। जब तक दम न भर जाय, तब तक यह व्यायाम करना चाहिए। (देखो चित्र नं० ३)

व्यायाम नं० ४—सीधे और तनकर खड़े होओ और कमर परसे इस प्रकार झुकते हुए हाथोंसे जमीनको छुओ जिसमें घुटने परसे पैर मुड़ें नहीं, बल्कि बिलकुल सीधे रहें। जब तक दम भर न जाय, तब तक यह व्यायाम करो। (देखो चित्र नं० ४)

व्यायाम नं० ५—जैसा कि चित्र नं० ५ में दिखलाया गया है, खड़े होकर बारी बारीसे दाहिना और बायाँ हाथ अच्छी तरह मुट्ठी बन्द करके और खूब जोरसे आगे ले जाना चाहिए और पीछे ले आना चाहिए। मुट्ठी छाती तक ले आनी चाहिए और कोहनी जहाँ तक हो सके, पीछे ले जानी चाहिए। जब तक दम भर न जाय, तब तक यह व्यायाम करना चाहिए।

कभी आवश्यकतासे अधिक व्यायाम नहीं करना चाहिए। प्रत्येक व्यायाम तभी तक करना चाहिए, जब तक कुछ थकावट न जान पड़े। जब कुछ थका-वट जान पड़े, तब थोड़ी देर ठहरकर सुस्ता लेना चाहिए और तब फिर व्यायाम करना चाहिए; और एक दो दिनोंके बाद प्रत्येक गतिकी संख्या एक एक और दो दो करके बढ़ाते जाना चाहिए। ये व्यायाम रातको सोनेके समय करने चाहिएँ। अति सम्भोग करनेके कारण शरीरके मज्जातन्तु विदोष

दुर्बल और शुष्क हो जाते हैं; इसलिए यदि ऐसे लोग खुली, शुद्ध तथा प्रशान्त वायुमें टहला करें, तो उन्हें बड़ा लाभ होगा।
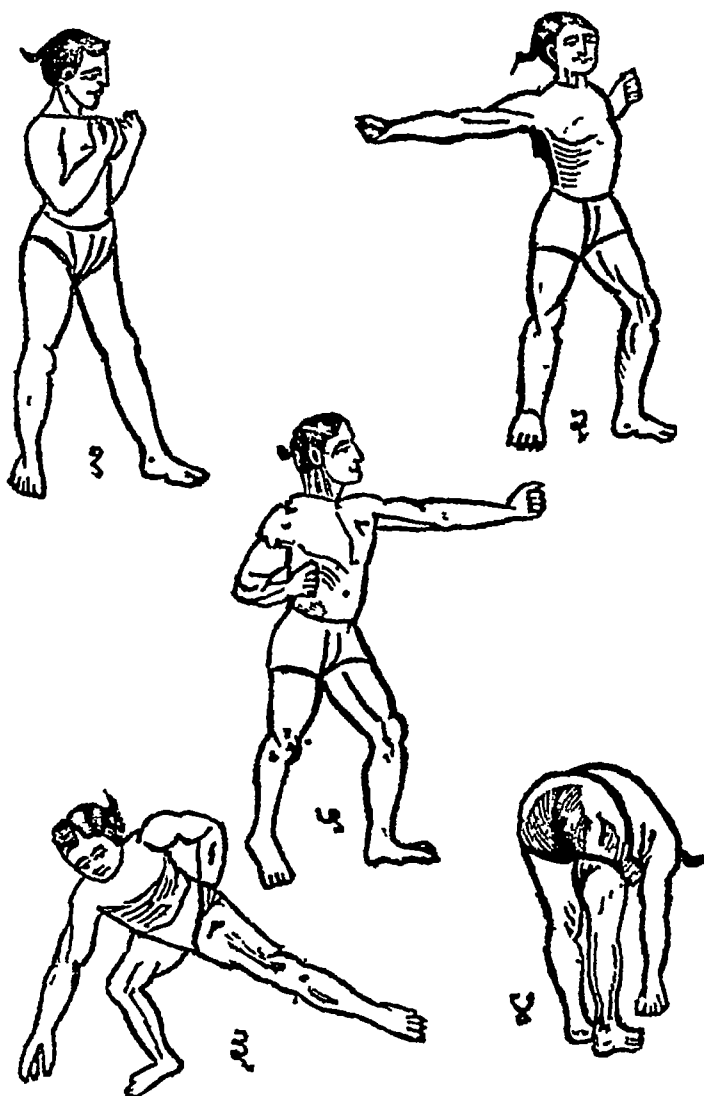
९६. संजीवन व्रतपर अथवा यदि अधिक स्पष्टीकरण करना हो तो ब्रह्म-चर्यपर कुछ पाश्चात्य विद्वान् डाक्टरोंका एक यह आक्षेप है कि इसके द्वारा

पुरुषका पौरुष नष्ट हो जाता है और वह कुछ नपुंसक हो जाता है। वह मनमें दुःखी और उदास रहने लगता है और उसका मज्जातन्तु-जाल पूर्ण-रूपसे बिगड़ जाता है। वे कहते हैं कि स्त्रियोंपर भी उसका ऐसा ही दुष्परिणाम होता है। उनका रंग बिलकुल पीला या सफेद हो जाता है। कभी कभी तो यहाँ तक होता है कि उनके चेहरेपर कुछ दाढ़ी या मूछ तक भी निकलने लगती है।

ये सब आक्षेप समझदार लोगोंके भले ही हों, पर समझदारीके नहीं हैं। कमसे कम भारतवर्षके हिन्दू समाजमें तो ये आक्षेप हास्यास्पद ही ठहरते हैं। इस सम्बन्धमें प्रायः यही कहा जाता है कि हजारों डाक्टर ऐसा ही कहते हैं; अर्थात् इसके सम्बन्धमें केवल पाश्चात्य डाक्टरोंका ही प्रमाण दिया जाता है और इसीसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हिन्दू समाजके लिए यह बात कितनी हास्यास्पद है।

लगातार बहुत वर्षों तक ब्रह्मचर्यका पालन करने पर भी अवसर पड़ने पर किसी ब्रह्मचारी अथवा साधुके अनाचारमें प्रवृत्त होनेके शुक्र आदिके कुछ उदाहरण केवल पुराणोंमें ही नहीं मिलते, बल्कि आजकल भी देखनेमें आते हैं। और उन उदाहरणोंसे दो बातोंका स्पष्ट रूपसे पता चलता है। एक तो यह कि अनेक वर्षों तक स्त्री-प्रसंगसे बचकर भी शारीरिक तथा मानसिक बल स्थिर रखना और बढ़ाना और जीवित रहना सम्भव है। और दूसरे यह कि लोगोंका यह कहना बहुत ही भ्रमपूर्ण है कि अनेक वर्षों तक ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे पुरुषत्वदर्शक गुण अथवा स्त्री-सम्भोगकी शक्ति नष्ट हो जाती है।

हिन्दू समाजमें जो विधवाएँ हैं, वे हिन्दू समाजकी सधवा स्त्रियोंकी अपेक्षा साधारणतः अधिक नीरोग, हृष्ट पुष्ट तथा दीर्घायु होती हैं। इसका एक प्रधान कारण यही होना चाहिए कि उन विधवा स्त्रियोंपर अपने पुरुष पतिकी कामेच्छा तृप्त करनेका भार नहीं पड़ता। यह बात ठीक है कि विवाहित स्त्रियोंकी अपेक्षा अविवाहित स्त्रियाँ जल्दी पीली पड जाती हैं, रोगी बनी रहती हैं और उनके शरीरपर वृद्धावस्थाके लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं; परन्तु इसकी अपेक्षा और भी अधिक ठीक बात यह है कि विवाहित स्त्रियाँ जितनी जल्दी पीली पडकर रोगी बन जातीं और वृद्धा भी देख पड़ने लगती हैं, उतनी जल्दी विधवा स्त्रियाँ इन सब बातोंका शिकार नहीं होतीं।

वास्तवमें बात यह है कि ब्रह्मचर्य कभी चित्त-शुद्धिका विघातक नहीं होता। वह वास्तवमें पुरुषत्वका वर्धक ही होता है। परन्तु यदि मन शुद्ध न रहे और उसमें निरन्तर सम्भोगकी वासना बनी रहे, तो केवल प्रत्यक्ष स्त्री-सम्भोगसे बचना ही अत्यन्त विघातक होता है। जिस अवस्थामें मनमें बार-बार और उत्कट रूपसे स्त्री-सम्भोगकी इच्छा उत्पन्न होती है और तत्सम्बन्धी अवयवोंका उत्थापन होता है और स्त्रीके साथ सम्भोग नहीं किया जाता, यदि वह अवस्था अधिक दिनों तक चलती रहे, तभी ऊपर बतलाये हुए सब विघातक परिणाम होते हैं।

स्वामी विवेकानन्दजीके शब्दोंमें

९७. मैं—भला आपके समान बननेकी आकांक्षा कौन कर सकता है?

स्वामीजी—क्या तुम यह समझते हो कि मेरे बाद और कोई दूसरा विवेकानन्द होगा ही नहीं? अभी थोड़ी देर पहले मेरे सामनेसे युवकोंका जो संघ भजन करके गया है, यदि ईश्वरकी कृपा होगी तो उसमेंका प्रत्येक युवक मेरे समान होगा।

मैं—स्वामीजी, आप जो चाहें सो कहें, परन्तु मुझे यह बात होती हुई नहीं दिखाई देती।

स्वामीजी—शायद तुम्हें यह नहीं मालूम है कि प्रत्येक व्यक्तिमें शक्ति आ सकती है। जो लोग निरन्तर बारह वर्षोंतक कठोर ब्रह्मचर्यका अखण्ड पालन करते हैं और जिनमें केवल परमेश्वरसे मिलनेकी ही इच्छा होती है, उन्हें यह शक्ति प्राप्त होती है। इसी प्रकारके ब्रह्मचर्यका मैंने पालन किया है। इस कारण मेरे मस्तिष्क परसे मानों एक परदा-सा हट गया है। इसी लिए मुझे तत्त्वज्ञान सरीखे सूक्ष्म विषयोंपर भी व्याख्यान देनेके लिए पहलेसे कुछ भी तैयारी नहीं करनी पड़ती। मान लो कि कल मुझे इस प्रकारका एक व्याख्यान देना है। ऐसी दशामें आज रातको ही कलके विषयके सम्बन्धके सब चित्र मानों मेरी आँखोंके सामने आकर नाचने लगेंगे, और ऐसे चित्रोंमें आज मुझे जो कुछ दिखाई पड़ेगा, वही मैं शब्दोंके रूपमें कल व्याख्यानके समय सब लोगोंके सामने उपस्थित कर दूँगा। जो लोग बारह वर्ष तक अखंड ब्रह्मचर्यका पालन करेंगे, उन्हें यह शक्ति अवश्य ही प्राप्त होगी। अब तुम्हारी

समझमें यह बात आ गई होगी कि यह शक्ति मेरे ही हिस्सेमें नहीं आई है। यदि तुम भी इस प्रकारके ब्रह्मचर्यका पालन करोगे, तो तुम्हें भी यह शक्ति प्राप्त हो जायगी। ×

महात्मा गाँधीके शब्दोंमें

९८. "वीर्यकी रक्षा करनेके लिए शुद्ध वायु, शुद्ध जल, ऊपर दिये हुए विधानके अनुसार शुद्ध आहार और शुद्ध विचारकी पूर्ण रूपसे आवश्यकता है। नीतिका आरोग्यके साथ ऐसा ही सम्बन्ध है। जो पूर्ण नीतिमान् होता है, वही पूर्ण आरोग्य भी प्राप्त करके नीरोग होता है।

"ज्यों ही आदमी सवेरे सोकर उठे, त्यों ही उसे यह समझकर काममें लग जाना चाहिए कि दिन बीत चला और सन्ध्या हो रही है। शीघ्र काम समाप्त करना चाहिए। इन सूचनाओंपर यथामति विचार करके जो व्यक्ति इनके अनुसार आचरण करनेका प्रयत्न करेगा, उसे स्वानुभूतिका फल शीघ्र ही चखनेको मिलेगा। जो व्यक्ति थोड़े दिनों तक भी पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करके अपने वीर्यकी रक्षा करेगा, उसे भी ऐसा जान पड़ने लगेगा कि मेरी मानसिक और शारिरिक शक्ति बढ़ गई। और फिर जब उसे एक बार यह मधुर अनुभव हो जायगा, तब फिर वह उसी प्रकार यत्नपूर्वक उसकी रक्षा करेगा, जिस प्रकार किसी दुर्लभ पारसकी रक्षा की जाती है। यदि इसमें तनिक भी व्यतिक्रम हुआ, तो तत्काल उसकी समझमें यह बात आ जायगी कि मेरी भारी हानि हुई है। आजकल हम लोगोंकी जो निःसत्व और निर्वीर्य स्थिति है, उसमें ब्रह्मचर्य ही हमारे लिए एक चिन्तामणि है और उसीकी आराधना करके हम लोग वीर्य-सम्पन्न और सत्वशील बन सकते हैं। मैं यह समझता हूँ

×मेरा जो स्वय अपना अनुभव है और दूसरे बहुत-से लोगोंके अनुभवका मुझे जो ज्ञान है, उसके आधार पर मैं निःशंक रूपसे यह विधान कर सकता हूँ कि आरोग्यकी रक्षा करनेके लिए विषय-वासनामें रत होनेकी आवश्यकता नहीं है। इतना ही नहीं, बल्कि मैं तो कह सकता हूँ कि विषय-वासनामें रत होनेसे आरोग्यकी हानि ही होती है। बहुत वर्षोंमें शरीर और मनका जो बल अर्जित किया जाता है, केवल एक बारके वीर्यपातसे उसका इतना अधिक नाश हो जाता है कि उसे फिरसे प्राप्त करनेमें बहुत समय लगता है; और इतने समयके उपरान्त भी एक बारकी गई हुई स्थिति फिर लौटकर नहीं आ सकती।—महात्मा गाँधी।

कि ब्रह्मचर्यका पालन करना कठिन है। ब्रह्मचर्यके अगणित लाभ समझने और भली भाँति उनका ज्ञान प्राप्त करनेपर भी मुझसे बहुत सी भूलें हुई हैं और उनका कड़ुआ फल भी मुझे चखना पड़ा है। उन भूलोंके होनेसे पहले मेरी जो उदात्त स्थिति थी, और उन भूलोंके होनेके उपरान्त मेरी जो दीन स्थिति हुई, उन दोनों स्थितियोंके चित्र आज भी मेरी आँखोंके सामने बने हुए हैं। परन्तु अपनी इन भूलोंके कारण ही मैं इस पारसका मूल्य समझनेमें समर्थ हुआ हूँ।

"मेरा विवाह बाल्यावस्थामें ही हो गया था। छोटी अवस्थामें ही मैं कामान्ध हो गया था, और उसी छोटी अवस्थामें पिताके पदपर भी आरूढ हो गया था। अनेक वर्षों तक इस अन्धकारमें पड़कर कष्ट भोगनेके उपरान्त अन्तमें मैं पूर्व संस्कृतिसे जाग्रत हुआ। मुझे अपने आसपासकी भीषण और काली स्थिति दिखाई पड़ी और मुझे इस बातका पूर्ण विश्वास हो गया कि इस स्थितिसे मुक्त होनेका ब्रह्मचर्य-पालन या वीर्य-रक्षण ही एक मात्र राम-बाण उपाय है। मेरी भूलोंके अनिष्ट परिणामका ज्ञान प्राप्त करके और मेरे अनुभवसे परिचित होकर यदि पाठकोंमेंसे एक आदमी भी सावधान हो गया और भविष्यमें होनेवाली अधोगतिसे बच गया, तो समझूँगा कि यह प्रकरण लिखकर मैं कृतार्थ हो गया।"

सारांश

९९. (१) वीर्यनाश सर्वस्व नाश करनेवाला प्रबल शत्रु है। वीर्यका संरक्षण करनेसे मानसिक और शारीरिक कार्य-क्षमताकी विलक्षण वृद्धि होती है।

(२) महीनेमें केवल एक बार अथवा केवल अपनी स्त्रीकी इच्छा ही वीर्यनाशकी परम अवधि है। संजीवन व्रत तो डेढ़ दो वर्षोंमें केवल एकाध बार स्त्री-प्रसंगको क्षम्य बतलाता है।

(३) हस्त-मैथुन, स्वप्न-दोष, वेश्या-गमन और स्वस्त्री-गमन वीर्यनाशके राजमार्ग हैं, और दूषित तथा दुर्बल मनोवृत्ति वीर्यनाशका मूल है।

(४) शृंगारपूर्ण पुस्तकोंके अध्ययन, बुरी संगति, उत्तेजक-आहार विहार और परिस्थिति तथा निकम्मे रहनेसे विषय-वासना बढ़ती है। केवल मनोवृत्तिको शुद्ध रखने और पूरा पूरा परिश्रम करनेसे ही काम-वासना कम होती है।

(५) इसके लिए मनोवृत्ति बदलनी चाहिए और मनको इष्ट तथा उदात्त बातोंकी ओर प्रवृत्त करना चाहिए। उदात्त भावोंको पहचानना, अपनी त्रुटियोंका ज्ञान प्राप्त करना और मनमें उदात्त आकांक्षा रखना ही सुधारका मूल आधार है।

(६) स्वयं-सूचना, उदात्त अध्ययन, ईश्वर-ध्येय-निष्ठा, आदरणीय लोगोंका सहवास, शीत-स्नान, सात्त्विक और सौम्य आहार, शारीरिक परिश्रम, व्यायाम, और स्त्री-पूजन काम-वासनाको दुर्बल करनेके साधारण और सर्वमान्य मार्ग हैं।

(७) व्यायाम, शारीरिक परिश्रम, शीत-स्नान, खुली हवामें टहलना, आदरणीय लोगोंकी संगति और वैराग्यविषयक ग्रन्थों आदिके अध्ययनसे प्रबल काम-वासना दबती है और ये सब उपाय नैमित्तिक तथा तत्काल गुण दिखलानेवाले हैं।

(८) ऐसे अवसरपर स्वयं-सूचना और रेतोर्ध्वीकरणका उपयोग करना चाहिए।

१००. महात्मा तुकारामजीके इन शब्दोंमें इस पुस्तकका उपसंहार किया जाता है—" मेरा यही उपदेश है कि आयुका नाश मत करो। "

यह विषय बहुत ही सूक्ष्म है, इसका महत्त्व इतना है कि यह जीवन तथा मरणसे सम्बन्ध रखता है; और इसके सम्बन्धमें सुशिक्षितोंकी कल्पना बहुत ही कायरतापूर्ण शिष्टाचार की है। परन्तु फिर भी हमें नित्य प्रति जो लिखित तथा मौखिक धन्यवाद मिलते हैं और जो अभिनन्दन प्राप्त होते हैं, उनके आधारपर यह कहनेमें हम कोई हानि नहीं समझते कि हमारा यह प्रयत्न कमसे कम लेखनकी दृष्टिसे कल्पनातीत रूपसे यशस्वी हुआ है।

अन्तमें पाठकोंसे यही निवेदन है कि प्रस्तुत पुस्तक चाहे पढ़नेमें कितनी ही सुन्दर क्यों न हो, परन्तु यह केवल पढ़नेके लिए नहीं लिखी गई है, बल्कि इसलिए लिखी गई है कि लोग दृढ निश्चयपूर्वक इसके अनुसार व्यवहार और आचरण करें।

धर्म-शास्त्र, योग-शास्त्र और वैद्यक-शास्त्रका स्पष्ट रूपसे यही कहना है कि माता-पिताको स्वय अपने लिए, अपने प्रिय कुटुम्बके लिए, आत्मोन्नतिके

लिए और राष्ट्रोन्नतिके लिए संजीवन-व्रतका यथासाध्य पालन करना चाहिए आजकलके जगद्वन्द्य तथा जगदुद्धारक महात्मा गाँधीसे लेकर साधारण व्यक्तियोंतक सभीका थोड़ा बहुत ऐसा ही अनुभव है।

न वेषधारणं सिद्धि-साधनं न च तत्कथा।
क्रियैव साधनं सिद्धेः सत्यमेव न संशयः॥

परिशिष्ट

—:०:—

(महात्मा गाँधीके अनुभवसिद्ध विचार)

"ब्रह्मचर्यका अर्थ है सभी इन्द्रियों और विकारोंपर सम्पूर्ण अधिकार। ज्यामितिकी रेखाके समान यह भी एक आदर्श है जो केवल कल्पनामें रह सकता है। जिस प्रकार ज्यामितिकी आदर्श-रेखा खींची नहीं जा सकती, उसी प्रकार यह आदर्श भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। परन्तु तब भी वह महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि उसपर बड़े बड़े महत्त्वपूर्ण सत्य—ज्यामितिके परिणाम—अवलम्बित हैं।...काल्पनिक रेखाके हम जितने ही अधिक निकट पहुँचेंगे, उतनी ही सम्पूर्णता हमें मिलेगी—हमारे परिणाम उतने ही सम्पूर्ण होंगे। परन्तु यदि हम अपने आदर्शको अपने सामने नहीं रक्खेंगे, तो हम बेपेंदीके लोटे बने रहेंगे।"

—अनीतिकी राहपर

× × × ×

"ब्रह्मचर्यके सोलहों आने पालनेका अर्थ है ब्रह्मदर्शन। यह ज्ञान मुझे शास्त्रोंद्वारा न हुआ था। यह तो मेरे सामने धीरे धीरे अनुभवसे सिद्ध होता गया। इससे सम्बन्ध रखनेवाले शास्त्र-वचन मैंने बादको पढे। ब्रह्मचर्यमें शरीर-रक्षण, बुद्धि-रक्षण और आत्म-रक्षण सब कुछ है, यह बात मैं व्रतके बाद दिनोंदिन अधिकाधिक अनुभव करने लगा। क्योंकि अब मैं ब्रह्मचर्यको घोर तपस्या न रहने देना चाहता था, परन्तु रसमय बनाना चाहता था। उसके बलपर काम करना था, इसलिए उसकी खूबियोंके नित नये दर्शन मुझे मिलने लगे। इस प्रकार जब मैं रसके घूँट पी रहा था, तो कोई यह न समझे कि मैं उस समय उसकी कठिनताका अनुभव नहीं करता था।....यह अधिकाधिक समझता जाता हूँ कि यह असिधारा-व्रत है और अब भी इसके लिए निरन्तर जागरूकताकी आवश्यकता देखता हूँ।"

—आत्मकथा

× × × ×

"ब्रह्मचर्य-पालनका यह अर्थ नहीं है कि मैं किसी स्त्रीको स्पर्श न करूँ।.... जिस निर्विकार दशाका अनुभव हम मृत शरीरको स्पर्श करके कर सकते हैं, उसीका अनुभव हम जब किसी सुन्दरीसे सुन्दरी युवतीका स्पर्श करके कर सकें, तभी हम ब्रह्मचारी हैं।"

× × × ×

"मेरा महात्मापन कौड़ी कामका नहीं है। क्योंकि वह राजनीतिक है और इसलिए थोड़े दिनोंमें उड़ जायगा। वास्तवमें मूल्यवान् वस्तु तो मेरा सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य-पालनका हठ ही है।......यही मेरा सर्वस्व है।"

—अनीतिकी राहपर

"इन्द्रियाँ ऐसी बलवान् हैं कि चारों ओरसे, ऊपर नीचे, दशों दिशाओंसे जब उनपर घेरा डाला जाता है, तभी वे कब्जेमें रहती हैं।"

—आत्मकथा

× × × ×

"मैंने खुद छः साल तक प्रयोग करके देखा है कि ब्रह्मचारीका आहार वन-पक्व फल हैं। जिन दिनों मैं हरे या सूखे वनपक्व फलोंपर रहता था, उन दिनों जिस निर्विकारताका अनुभव होता था वह खुराकमें परिवर्तन करनेके बाद नहीं हुआ।. ... ."

—आत्मकथा

× × × ×

"उपवाससे वास्तविक लाभ तभी होता है, जहाँ मन भी देह-दमनमें सहायता देता है।... उपवासादि साधनोंसे मिलनेवाली सहायताएँ बहुत होते हुए भी अपेक्षाकृत थोड़ी ही होती हैं। उपवास करता हुआ भी मनुष्य विषयासक्त रह सकता है; परन्तु बिना उपवासके सम्पूर्ण विषयासक्तिका नाश असभव है। इस लिए उपवास ब्रह्मचर्यपालनका एक अनिवार्य अग है।"

—अनीतिकी राहपर

"जो जिह्वाको कब्जेमें रखता है उसके लिए ब्रह्मचर्य सुगम है।. .जिस दर्जे-तक पशु ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, उस दर्जेतक मनुष्य नहीं करता। इसका कारण जीभपर पूरा पूरा निग्रह न होना है।...पशु महज़ पेट भरने लायक घास-पर गुजर करते हैं।"

"स्वस्थ पुरुष वही है, जिसके विचार इधर उधर दौड़े दौड़े नहीं फिरते, जिसके मनमें बुरे विचार नहीं उठते, जिसकी नींदमें स्वप्नोंका व्याघात नहीं पड़ता, जो सोते हुए सम्पूर्ण जागृत होता है। ऐसे मनुष्यको कुनैन लेनेकी आवश्यकता नहीं होती। उसके न बिगड़नेवाले रक्तमें सम्पूर्ण आन्तरिक विकारोंको दबा देनेकी शक्ति होगी।"

× × × ×

"कुमारिकाके स्पर्शसे अथवा दर्शनमात्रसे पुरुष विकारमय हो जाता है, ऐसी समझको मैं पुरुषके लिए पुरुषत्वको लजानेवाली समझता हूँ। यह बात यदि सत्य हो, तो ब्रह्मचर्य असंभव है।"

× × × ×

"विवाह शरीरका नहीं, आत्माका है। अगर विवाह शरीरका ही हो, तो पतिके मरनेपर मोमके पुतले या फोटोसे ही सन्तोष क्यों न कर लिया जाय?..."

× × × ×

"युवकोंके जीवनमें सबसे बड़ी और नहीं तोड़ी जा सकनेवाली शर्त यह होनी चाहिए कि वे अन्तर और बाहर पवित्र रहें—उनके जीवनके समस्त कार्योंमें शुचिता हो, अर्थात् वे ब्रह्मचर्यका पालन करें।"

—नवजीवन

"हरएक मनुष्यको भरसक इस बातकी कोशिश करनी चाहिए कि वह विवाह न करे। लेकिन विवाह कर लेनेपर उसे चाहिए कि वह अपनी स्त्रीके साथ भाई-बहिनकी तरह रहे।"

—टाल्स्टाय

"ब्रह्मचर्यका मार्ग स्वर्गका मार्ग है। स्वर्गका राज्य ब्रह्मचारियोंके लिए है। उसके द्वारपर प्रदीप्त अक्षरोंमें लिखा हुआ है—जो शक्तिहीन हैं वह भीतर न आवें।"

—टी० एल० वास्वानी